

एक साहित्यिककी डायरी

गजानन माधव मुक्तिबोध



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक - १९७

सम्पादक एवं विद्यामक :

बहमीचन्द्र श्रिन

EK SAHITYIK EKE DIARY

(*Balke-rnays*)

GAJANAN MADHAV

MUNTIPODH

Bheretiye Jnospith

Publicatioe

First Edition 1964

Price Rs. 2 50

©

प्रकल्पक

भास्तीय श्वास्त्री

प्रधान कार्यालय

१ पत्तीपुर बाक चौक, बल्लारवा १७

प्रधान कार्यालय

दुर्गापुर रोड, बाटापती-२

द्वितीय केन्द्र

११९ 1११ मेलावी सुधाय मार्ग, दिल्ली-२

प्रथम संस्करण १९६४

मूल्य द्वार रुपये

सम्पत्ति पुरचालन बाटापती-५

क्रम

	●
१ तीसरा अध्याय	१
२ एक लम्बी कविताका अन्त	३०
३ इबराहम खुर्रमका विग्रह	४४
४ हाशिएपर कुछ नाट्य	५१
५. सड़कको खेकर एक बातचीत	५८
६ एक मित्रको पत्नीका मझ-चिह्न	६५
७ नयकी जन्म-कुण्डली : एक	७४
८ नयकी जन्म-कुण्डली दो	८२
९ बीरकर	९२
१० बिसिए आर अद्वितीय	१०३
	●

तीसरा क्षण

आजसे कोई बीस साल पहलेकी बात है। मेरा एक मित्र केदार और मैं दोनों अक्सर-अक्सर घूमन जाया करते। पहाड़-पहाड़ बढ़ा करते मनी मनी पार किया करते। केदार मरे-जैसा ही पन्द्रह बपका बालक था। किन्तु वह मुझ बहुत ही रहस्यपूर्ण माम्म होता। उसका रहस्य बढ़ा ही बढ़ीय था। उस रहस्यसे मैं भीतर-ही-भीतर बहुत आकर्षित रहता।

केदारने ही बहुत-बहुत पहले मुझे बताया कि इडा पिपसा और सुपुम्ना किसे कहते हैं। कुण्डलिनी-शक्त्यो मुझे बढ़ा डर लगता। उसने हृद्योगियांकी बहुत-सी बातें बड़े ही विस्तारके साथ बयान कीं।

केदारका छिर पीछेसे बहुत बढ़ा था। आगेकी ओर सम्बा और बिसृत था। माया साधारण और पनी-पनी भीहोंके बीच कामी बालें बहुत महरी माला हो कुर्से पुतलीके काँचस मड़े हुए हों। यह भी लगता कि उसकी बालें तलपर हैं। यह भी महसूस होता कि उसकी बालोंके नीचे कोई डूमरी बालें और जमो हुई हैं। बालोंके बीच नाककी घुसमात पर पनी-पनी भीहोंकी बोनों पट्टियाँ नीचे झुककर मिल जाती थी। कभी कभी नाई-शारा वह इस मित्तन-रूपतपर भीहोंके बाल कटवा देता। लेकिन उसके रोएँ छिर ऊग आते। बालोंके नीचे फीका-नीला सम्बा तपिस और उकताया हुआ पका चेहरा था।

केदार मसोले ऊदका बालक था जिसे खेलन-बूहनसे नाई माह नहीं था। उसका गणित विषय अच्छा था। इसीलिए केदार मरे लिए मिटिल और मैट्रिकमें अच्छी ही पढा था।

फिर भी मैं केराबके प्रति विशेष उत्साहित नहीं था। मुझे प्रतीत हुआ कि वह मेरे प्रति अधिक स्नेह रखता है। वह मेरे पिताजीके मध्ये मित्रका लड़का था इसलिये उसके यहाँ मेरा काफी आना-जाना था।

केवल एक ही बात उसमें और मुझमें समान थी। वह बड़ा ही भुमबद्ध था। मैं भी भुमनेका दीकीन था। हम दोनों सुबह-साम और छट्टीके दिनमें तो दिन-भर दूर-दूर भ्रमण जाया करते।

इसके बादबूढ़ उसके बच्चा बेहरा पीका और पीला रखा। किन्तु वह मुझसे अधिक स्वस्थ था उसके बाल बपारा मजबूत था। वह निस्सम्बैह हट्टा-कट्टा था। फिर भी उसके बेहरेकी लषा काशी पीसी रहती। पीले सम्बे बेहरेपर धनी मीहोंके नीचे बहरी-बहरी कासी बमक बार कुएँ-नुमा झीलें और सिरपर मोठे बाल और बाल अधिक मजबूत टूठी मुझे बहुत ही रहस्य-भरी भासूम होती। केराबमें बाळ-मुळम बचलता न थी। वह एक स्त्रि-प्रसाम्थ पावान-मूर्तिकी भाँति मेरे साथ रखा।

मुझे सपना कि मूमिके मर्ममें कोई प्राचीन सरोवर है। उसके दिनारेपर बराबने घाट काँठकाटी देव-मूर्तियाँ और रहस्यपूर्ण मर्म कर्माँवाले पुराने मन्दिरे हैं। इतिहासने इन सबको दबा दिया। मिट्टीकी लहपर लह परछोंपर परछे बट्टाँपर कट्टाँने कम बयीं। सारा दुस्य मूमिमें गड़ गया बडुस्य हो गया। और उसके स्वामपर सूँकेट्टुमके मने बिलावटी पैड़ लया दिये गये। बंभके बना दिये गये। बमकदार कपड़ पहने हुई पुरमुरत लड़कियाँ घूमने लयीं। और उगहीं-किट्टीं बंभलामे रहने लया मेरा मित्र केराब जिसने सापद पिछके जन्ममें या उसके भी पूर्वके जन्ममें उसी मूमि-बमस्व सरोवरका बक विना होया वहाँ विचरन किया होना।

मनुष्यका ब्यक्तित्व एक महारा रहस्य है — इसका प्रथम भाग मुझे केराब द्वारा मिला — इनलिये महीं कि केराब मेरे सामने लुना मुक्त-हृदय नहीं था। उसके जीवनमें कोई ऐसी बात नहीं थी जो छिपायी जान योग्य

ही। इसके अलावा वह बालक सबमुच बहुत ब्याकु, धीर-बम्भीर, मीपण कष्टोंको सहज ही सह लेनबासा अत्यन्त क्षमाशील था। किन्तु साप ही वह विप्लित म्पिर, अर्चबल यन्त्रवत् और सहज-स्नेही था। उसम सबसे बड़ा बाप यह था कि उसमें बालकचित्त बाल-मुसम गुण-बोप नहीं थे। मुझे हमेशा म्भा कि उसका बिकव बृद्धताका लक्षण है।

जब हम हार्ड-स्कुलमें थे केसब मुझ निजम अरव्य-अरेफ़ोंमें ले जाता। हम मन् हरिकी गुहा मछिरलापकी समाधि आदि निजंन किन्तु पबिन स्वानोंमें जाते। मयल्लावके पास गिरा नरी बहुत गहरी प्रचण्ड मग्गर और स्वाम-भील थी। उसक किनारे-किनारे हम नये-नये भौषोस्मिन् प्रदेशोंका अनुमन्बान करते। गिराके किनारोंपर गिरव और भैरव सोमें बिठावीं। मुबहें और दुपहर अपने रक्तमें समेट ली। छाय बम्प प्रदेश वशाममें भर मिया। सारी पृथ्वी बरामें छिया ली।

मैने क्साबको कभी भी पापाम्पास करते हुए नहीं देला न उसने कभी सबमुच एमो सापला की। फिर भी बह मुसले घोषकी बातें करता। मुपुम्ना नाड़ीके केन्द्रीय म्दस्वकी बात उसने मुझे समझावी। पदचक्रकी व्यवम्बापर भी उसने पूण प्रकाश डाला। मेरे मनके अँबेरेको उमक प्रचासन विभिष्ट्र नहीं किया। किन्तु मुझ उसके घोषकी बातें रक्ष्यके मयनेवी डरावने अँबेरेकी भाँठि आकषित करती रहतीं मानों म किन्हीं गुहाओंके अँबेरेमें जला जा रहा हूँ और बहूनि (किमी लीकी) बोर्ड मयनेवी पुकार मुझे मुनावी दे रही है ॥

मैन अपन मनका यह बिन्न उमे कर् मुनाया। बह मरी तरक अब पहलेमे भी अपिक आकषित हुआ। बहुत सहानुमूतिम मरी तरक प्यान रैता। धीरे-धीरे मै उसके अत्यन्त निष्ट आ गया। उसकी मलाहक बिना नाम करना अब मेरे लिए अमम्भव हो गया था।

गापारण कपते मेरे मनमें उटनशाली भाव-तरंगें मै उमे बह मुनाया - चाहे वे भावनाएँ अरुणो हों चाहे पुरी चाहे व गुपी करन

लायक हों चाहे डॉकमें लायक । हम दोनोंके बीच एक ऐसा विस्वास हो गया था कि तत्पश्चात् अनावर करना सुधाना उससे परदेह करके बिमारी तत्पश्चात् डाल देना न बेवकफ़ एलत है, बरन् उससे कई मानसिक उलझने उत्पन्न होती है ।

एक बात कहूँ । अपने जमाक या भाव कहते समय मैं बहुत उच्छ्वसित हो उठता । मुझे लगता कि मन एक रहस्यमय सोक है । उसमें अँधेरा है । अँधेरेम सीढ़ियाँ हैं । सीढ़ियाँ नीली हैं । सबसे निचली सीढ़ी पानीमें डूबी हुई है । वहाँ अबाहू काका जल है । उस अबाहू जल से स्वयंकी ही डर लपटा है । इस अबाहू काके जलमें कोई बीज है । वह घायर में ही है । अबाहू और एकदम स्याह-अँधेरे पानीकी सतहपर खीरनीका एक जमकदार पट्टा फैला हुआ है, जिसमें मेरी ही जखीं जमक रखी हैं । मानों बी नीले भूँगिया पत्थर भीतरसे उद्दीप्त हो उठे हों ।

मरे मनके तहज्जानेमें सद्यै हुई खनियाँ सते आकषिप्त करतीं । बीरे बीरे वह मुझमें पयादा रिक्तवस्ती लेने लया । मैं जब उसे अपने मनकी बातें कह सुनाता तो वह क्षण-भर अपनी बनी भीहूँवाली प्रशान्त-स्विर जीबंसि मेरी तरफ़ देखता रहता । साधारण बातें जो कि हमारे समाज की विरोधताएँ थीं हमारी खर्चाका विषय बनतीं । यद्यपि उसकी ज्ञान सम्पत्ति बल्य ही थी हमारी खर्चाएँ विविध विषयापर होतीं । मुझे अनीतक मान्य है कि उसने मुझे पहली बार कहा था कि गान्धीबादने भावुक कमकी प्रकृतिपर कुछ इस ढंगसे और दिया है कि सप्रस्त बीडिक प्रकृति दबा दी गयी है । असकम यह गान्धीबादी प्रकृति प्रस्त विद्वेषक और निष्कपकी बोडिक क्रियाओंका अनादर करती है । यह बात उसने मुझ तक नहीं भी जब सन् तीस-इकतीसका सत्याग्रह छलन हो चुका था और विचार सघामिनि पुस्तकेकी प्रकृति ओर पकड़ रखी थी । तब इस स्वामीय इन्टरमीडिएट कालेजके प्रिन्ट ईयरमें पढ़ते थे । तभी हमन उसके पब वर्षीय आयोजनका नाम सुना था ।

इसके बाद हम द्विती कलियुगमें पहुँचे - किसी दूसरे घरमें। मुझे नहीं मालूम था कि केवलने भी बहरी कलियुग जाँएन किया है। मैं उनमें बारीमें बातकारी सेनेकी कोई कोटिप्रा भो नहीं की थी। जब तो यह कि मेरा उसके प्रति कोई विशेष स्नेह नहीं था न कोई आकर्षण। ऐसे पापागबन् प्रयास गम्भीर व्यक्ति मुझ पसन्द नहीं। हाँ उनके प्रति मनमें सम्मान और प्रशंसाके भाव थे। और, खूबि बह मुझे बहुत चाहता था इसलिये मुझे भी उसे चाहना पड़ता था। चायत्र उमे मेरी यह स्थिति मालूम थी। लेकिन कभी उसने अपने मनका भाव नहीं बरगाया हा सम्बन्धमें।

और, एक बार, जब हम दोनों फोच ईयरमें पढ़ रहे थे वह मुझे कैम्प्टीनमें जाय पिलाने ले गया। केवल में ही बात करता जा रहा था बालिर, वह बात भी क्या करता - उसे बात करना आता ही नहीं था मुझ फिलॉसफीमें सबसे ऊँचे नम्बर मिले थे। मैंने प्रश्नोंके उत्तर ईस-ईस दिने इसका मैं रस-बिमोर हीकर बगन करता जा रहा था। बात पीकर हम दोनों साथी मीस डूर एक टालाबके किनारे जा बैठे। वह ईस ही चुप था। मैंने साइकोएनलिसिसकी बात छोड़ दी थी। जब मैं पाठ-प्रवाद बातमें बह कुछ उकताने लगता तब वह परपर उठकर टालाबमें फेंक मारता। पानीकी सतहपर सहरें बलतीं और हुप हुप की आवाज।

साँस पानीके भीतर बटक गयी थी। सम्प्या टालाबमें प्रकटा कर ना रही थी। नाक-भङ्गक आकाशीय बरत्र पानीमें सूक रहे थे। और सम्प्याके इस रंघीन धोवनमें उगमल हो उठ्य था।

हम दोनों उठ बने और डूर एक पीपलके गूणके नीचे गड़े हो रहे एकाएक मैं अपनेमे चीक उठा। पता नहीं क्यों, मैं स्वयं एक बड़ी भावमें आनक्तिन हो उठा। एत पीपल-गूणके नीचे अँपरेमें मैंने उस एक बड़ोब और बिलगन जावेदमें कहा 'याम रंघीन याम मेरे भीतर

लायक हों चाहे डॉकने लायक। हम दोनोंके बीच एक ऐसा बिस्वास हो गया था कि लक्ष्यका अलापर करना चुनाना उससे परहेज करके विमात्री तलवारमें डाक देना न केवल प्रकृत है, बरम् उसस कई मानसिक संकष्टनें उत्पन्न होती है।

एक बात कहूँ। अपने ज्ञानका या भाष कहते समय मैं बहुत उन्मुखित हो उठता। मुझे लगता कि मैं एक एड्समय लोक हूँ। उसमें अँधेरा है। अँधेरेमें सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियाँ भीनी हैं। सबसे निचली सीढ़ी पानीमें डूबी हुई है। वहाँ अबाह काका जक है। उस अबाह बस-सं स्वयंकी ही डर लगता है। इस अबाह काले बलमें कोई बैठ है। वह घामर में ही है। अबाह और एकदम स्याह-अँधेरे पानीकी सतहपर जाँचनीका एक चमकदार पट्टा फैला हुआ है जिसमें मेरी ही आँखें चमक रही हैं। मारों को नीले मूँगिया पत्थर भीतरले जहीण्त हो उठे हों।

मेरे मनके तहसलानेमें लटी हुई धनियाँ सते आकषित करती। बीरे बीरे वह मुझमें पयादा रिझवस्यी सिने लया। मैं जब सते अपने मनकी बानें कहूँ मुनाठा तो वह सत-अर अपनी पनी औहोवाली प्रणाम-स्विर आँखेंसे मेरी तरफ़ देखता रहता। साधारण बातें जो कि हमारे समाज की विरोधताएँ थीं हमारी चर्चाका विषय बनतीं। यद्यपि उसकी ज्ञान-सम्पत्ति अल्प ही थी हमारी चर्चाएँ विविध विषयोपर होतीं। मुझे अनीतक याद है कि उसने मझे पहली बार कहा था कि आन्धीवारने मायुक कमन्की प्रवृत्तिपर कुछ इस ढंगसे जोर दिया है कि सप्रमन बौद्धिक प्रवृत्ति बजा ही गयी है। असकमें यह आन्धीवारी प्रवृत्ति प्रमन विस्केपक और निष्कपकी बौद्धिक जियाबोका अनादर करती है। यह बात उसने मुझे तब कही थी जब सन् तीस-इकतीसका सत्वायह खरम हो चुका था और विमान समाजोंमें पुसनेकी प्रवृत्ति जोर पकड़ रही थी। तब हम स्वानीय इण्टरमीडिएट कॉलेजके प्रस्ट ईयरमें पढ़ते थे। तभी हमने उसके पथ वर्षीय आयोजनका नाम चुना था।

इसके बाद हम द्विती कालक्रममें पहुँचे — किसी दूसरे राहमें । मुझे नहीं मालूम था कि केशवमें भी बड़ी कालिदा जॉएन किया है । मैंने उसके बारेमें जानकारी लेनेकी कोई कोशिश भी नहीं की थी । सब ता यह है कि मेरा उसके प्रति कोई विशेष स्नेह नहीं था न कोई आकर्षण । ऐसे पापापवत् प्रदान्ठ सम्मीर शक्ति मुझ परसत् नहीं । हाँ उसके प्रति मेरे मनमें सम्मान और प्रशंसाके भाव थे । और, क्योंकि वह मुझे बहुत चाहता था इसलिए मुझे भी उसे चाहना पड़ता था । चायद उस मेरी यह स्थिति मानस थी । लेकिन कभी उठने अपने मनका भाव नहीं दरसाया इस सम्बन्धमें ।

और, एक बार, जब हम दोनों श्रेष्ठ टियरमें पढ़ रहे थे वह मुझ कैम्पसमें जाय स्थान के गया । कबल में ही बात करता जा रहा था । बाविर, वह बात भी क्या करता — उस बात करना जाता ही करता था । मैंने डिप्लोमाकीमें सबसे ऊँचे नम्बर मिले थे । मैंने प्रश्नोंके उत्तर वैज्ञानिक स्थिति इसका मैं रस-बिभौर होकर बयान करता जा रहा था । जाय पोरकर हम दोनों बापों मोम दूर एक सामान्य किनार जा बैठे । वह वैसा ही चुप था । मैंने माइक्रोएलर्जिसिस्की बात छाड़ दी थी । अब मर्त्य पार-प्रवाह् बातमें वह कुछ उचरताम लगता तब वह पन्पर उठाकर सामानमें फेंक मारता । पानीकी सतहपर सत्रने बनती और कुछ दृश्यकी आवाज ।

सोम पानोके भीतर सटक मयी थी । मन्था सामानमें प्रवेश कर नहीं रही थी । साक-भड़क आकाशीय बस्त्र पानीमें मूख रहूँ थे । और मैं कम्प्याके इन रंवीन वीचनमें उगमत्त हूँ उठा था ।

हम दोनों उठे चके और दूर एक पीपलके बुसके नीचे लह हो रहे । एवाएक मं अपनेमें बाँक उठा । पता नहीं क्यों मैं स्वयं एक बजीब भावसे आर्पित हो उठा । उस पीपल-बुसके नीचे अँधेरेमें मैंने उसमें एक बजीब और बिलक्षण आँसुमें कहा 'साम रंगीन पाम मेरे भीतर

लगा गयी है। बस गयी है। वह एक जादुई रंजीत शक्ति है। मुझे उस मुकुटमार ज्वालना-माही जादुई शक्तिसे — मानी मुझसे मुझे डर समझा है। और सबकुछ उस मुझे एक कौपकौपी जा गयो ॥

इतनेमें धाम सौवली हो गयी। बुद्ध अँधेरेके स्तूप-व्यक्तित्व बन गये। पक्षी खुप हो उठे। एकाएक सब और स्तम्भता छा गयी। और फिर इस स्तम्भताके भीतरसे एक बम्पर पीली सड़क अँधेरेपर चढ़ गयी। काँसेबके मुम्बवर और बुराँके अँधेरे दिखारोंपर सटकती हुई चारमी सडेर बोती सी चमकने लगी।

एकाएक मेरे कन्धेपर अपना चिथिक डीसा हाथ रख क्रोधन मुझसे कहा 'याह है, एक बार तुमने सीम्बर्यकी परिभाषा मुझसे पूछी थी?' मैंने उठकी बातकी तरफ ध्यान न देते हुए बतखी-भरी जापाजमें कहा 'हाँ।

'जब तुम स्वयं सीम्बर्य अनुभव कर रहे हो।'

मैं नहीं जानता कि मैं क्या अनुभव कर रहा था। मैं केवल यही कह सकता हूँ कि किसी मारक अवघनीय शक्तिन मुझ भीतरसे जकड़ लिया था। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उस समय मेरे अन्तःकरणके भीतर एक कोई और व्यक्तित्व बैठा था। मैं उसे महसूस कर रहा था। कई बार उसे महसूस कर चुका था। किन्तु जब ही उसने भीतरसे मुझे बिलकुल ही पकड़ लिया था। 'मैं जो स्वयं था वह अस्वयं हो गया था। अपनेमें 'बहुतर बिलसत अस्वयं।

एकाएक उस पापाप-मूर्ति मित्रकी भीतरी रिक्ततापर मरत ध्यान हो जाया। वह मुझसे कितना दूर है, कितना भिन्न है कितना अलग है -- अर्वाचनीय रूपमें भिन्न ॥

वह मुझसे पण्डिताऊ भाषामें कह रहा था किमी वस्तु या वृत्त या भाषसे अनुभव जब एकाकार हो जाता है तब सीन्दम-नाम होता है। सप्लेक्ट और अश्लेक्ट वस्तु और उसका दर्शन इन दो पृथक तरकोंका

वेर फिटकर जब सकरेक आँव्केस्टे तारात्म्य प्राप्त कर लेता है तब सौन्दर्य भावना उत्पन्न होती है ॥

मैंने उसकी बातकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। सौन्दर्यकी परिभाषा मे करे जा उसमें अछूने है जैसे मेरा मित्र केसर। उनकी परिभाषा सही हो ता क्या, एकल हो तो क्या ! इसमें क्या होता जाता है ॥

दिन गुजरते गये। एक ही लंबक हम दो साथी भिन्न प्रकृतिक भिन्न गुण-धर्मके भिन्न दिशामुके। एक-दूसरेसे उकता उठनेके बावजूद हम दोनों मिल जाते। चर्चा करने लगत। मेरी खबर बतानी-जैसी पसंदी। केसाब साँकसमें सग हुए फिर भी जुले हुए, हाँसे तासे-वा प्रतीत होता। कोई मकानके अन्दर जाय दक्ष भाल स बोरी-बपाटी कर से, सेकिन आते-बहुत साँकसमें ताका उकर अटका जाये वह भी लुका हुआ जाकी समानेकी पकरत नहीं। ताका भीतरसे टूटा है जाकी रूप ही नहीं सकती।

डेकिन इस तासेमें एक दिन अकस्मात् जाकी भी लग गयी। छुनी का दिन। बुनाके समीप रूप अलसा रही था। मैं घरमें बँटे-बँटे बार हो रहा था। मेने साइकिलपर आते हुए और घूममें चमकते हुए एक चेहरको घूमे देसा।

इपर मन कासे कहियाएँ सिंग ली थीं। सोबा तिनार लुद ही नाममें फँस आ रहा है। केसाबका चहरा उत्पन्न था। चेहरपर कुछ नयी बात थी जिसको मैं पहचान नहीं पाया। बनिताजंति मुग इतनी प्रमन नहीं थी कि मैं केसाबकी तरफ ध्यान दे सकूँ। मैं तो अपन नशमें एगा था।

अपर मैं बोल्ता न शुरू करता तो चुप्पी कासी होकर यनी और यनी हाकर और भी कासी और लम्बी हो जाती। इसलिए मैं ही बातना शर किया 'बँटे निकसे ?

किसम गबन एक ओर घिराकर रह गया। उसके बाल तब आधे माथेपर आ गये। मुझे लम्बा बहू आराम करना चाहता है।

उसने आरम्भ किया मैंने बहुत-बहुत सोचा कि ईस्मेटिक एक्सपीरि एन्स क्या है। आज मैंने इसी सम्बन्धमें कुछ लिखा है तुम्हें सुनाने आया हूँ।

भीतर दिलमें मेरी नाती मर गयी। मैं जब कबिताएँ सुनानेकी सवाहिर रखता था। वह वह 'केसल' अपनी सुनाने बैठेया। मेरी सारी सुपहार सराब हो आयेयी। सी।

मैंने प्रस्ताव रखा 'अपन उस बिपयपर बात ही क्यों न कर सें।

'जरूर लेकिन तुम्हें डिस्पिन्डसै बात करनी होगी। यह कहकर वह मुसकुरा दिया ॥

यह मुसकुराहट मुझे चुम पयी। तो क्या मैं इतना पागल हूँ कि बात करनमें मटक जाता हूँ। इस सार्वजनिक बहुत ध्यानपूर्वक मेरे स्वभावका अध्ययन किया होना। धायब मैं ही इसे बहुत 'बोर' करता रहा हूँ। अपने स्वभावके अध्ययनके इतने अधिक और इतने प्रदीप्त सबसर किसीको देना धायर उचित नहीं था। मैं तो उल्टू-सरीखा बोलता जाता हूँ और ये हजरत अपने विभागकी मोटबुकमें मेरी हर सखती टीप केते हैं।

मैंने विस्वास दिखानेकी जरूरतसे बेध और कुबेध करते हुए कहा 'बात बिलकुल ईपसे ही होगी।'

उसने कहा 'मैंने तुम्हें बताया था कि 'निज और 'पर 'स्व-यज्ञ' और 'बस्तु-यज्ञ' दोनों जब एक हो जाते हैं तब तादात्म्य उत्पन्न होता है।

उसके भावोंको समझीरता कुछ ऐसी भी बेहद उसने इतना धीरियस बना रखा था कि मुझे अपनी हँसी बाब देनी पड़ी। पड़खी बात तो यह है कि मुझे उसकी समझबली अच्छी नहीं लगी। यह तो मैं जानता हूँ कि सारे यज्ञका मूल आधार सन्नेक्ट-ऑब्जेक्ट रिबेसमधिपकी कल्पना है—स्व-यज्ञ और बस्तु-यज्ञकी परिकल्पनाएँ और उन दो पक्षोंके परस्पर

सम्बन्धकी बन्धनाके आकारपर ही दयान बढ़ा होता है। अथवा यू कहिए कि ज्ञान-मीमांसा बढ़ी जाती है। एपिस्टेमोलॉजी अर्थात् ज्ञान-मीमांसाकी बुनियादपर ही परिकल्पनाओंके प्रामाण्यका रचना की गयी है। इस दृष्टिसे देखा जाये तो मुझ वाक्यपर हमनेकी उल्लेख नहीं था। मैं उसकी स्थापनाको विबाध मान सकता हूँ हास्यास्पद नहीं।

फिर भी मैं हँस पड़ा — इसलिये कि मुझ उसका सम्बन्धमें उसके स्वयंके विभिन्न व्यक्तिगतकी समझ दिलनायी था। वही वास्तविक गतिहीन ठण्डा पापागबन् व्यक्तित्व !!

उसकी मौहें कुछ बाहुल्यित हुई। फ्रीका पीला चेहरा किञ्चित् विस्मयसे मेरी ओर वही ठण्डी दृष्टि बास्ने लगा — मानों वह मेरे लम्बका अध्ययन करना चाहता हो।

मैंने कहा भाई, मुझे ठाढ़ारम्भ और तशकारिताकी बात समझमें नहीं आयी। जब तो यह है कि मैं किसी बस्तुमें तशकार नहीं हो पाता। तशकारिताकी बातका मैं गूण्य नहीं करता किन्तु मैं उसको एक माध्यमाके रूपमें ग्रहण नहीं करना चाहता।

उमने कहा 'अपों ?'

मैंने जबाब दिया "एक तो मैं बस्तु-यज्ञका टीक-टीक अर्थ नहीं समझता। द्वितीयमें मनने बाह्य बस्तुको ही बस्तु समझा जाता है — ऐसा मेरा यथाल है। मैं कहता हूँ कि मनका तत्त्व भी बस्तु हो सकता है। और अथवा यह मान लिया जाय कि मनका तत्त्व भी एक बस्तु है तो ऐसे तत्त्वके माय तशकारिता या ठाढ़ारम्भका कोई मतलब नहीं जाता क्योंकि वह तत्त्व मन ही का एक माय है। हाँ मैं इस मनके तत्त्वक माय तट स्वप्नाके रगकी बन्धना कर सकता हूँ, तशकारिताकी नहीं।

मेरे स्वर और गहरकी हृदयकी-थीमी धतिये उमे विरबासु निरा दिया कि मैं उसकी बात उद्दानके लिए बात नहीं कर रहा हूँ बरन् उसकी बात कल्पनमें प्रहनुम शान्तिकी बन्धनाका बयान कर रहा हूँ।

आखिरकार वह मर मिग या बुद्धिमान् और कुसाय या । उसने मेरी ओर देखाकर क्विचित् स्मित किया और कहे सगा 'तुम एक लम्बाक-की हैसियतसे बोल रहे हो इसलिए ऐसा कहते हो । किन्तु सभी लोच कलक नहीं है । बचक है पाठक है भोटा है । वे है इसलिए तुम भी हो - यह नहीं कि तुम हो इसलिये वे है ।' व तुम्हारे लिये नहीं है, तुम उनके सम्बन्धसे हा । पाठक वा भोटा ठारात्म्य वा ठगपठसे बात शुरू करें तो तुम्हें आश्चय नहीं हीगा चाहिए ।

मेर मुँहसे निकला 'तो ?'

उसने जारी रक्खा 'तो यह कि सेखनकी हैसियतसे सृजन प्रक्रियाक विरलेयनके घातसे होते हुए सौन्दर्य-मीमांसा करने वा पाठक बच्चा बर्षककी हैसियतसे ककानुभवके मायसे मुजरते हुए सौन्दर्यकी व्याख्या करोये ? इस सवालका जवाब हो ?

मैं उसकी जपेटमें आ गया । मैं कहे चलता था कि दोनों कर्ना । लेकिन मैं ईमानदारी बरतना ही उचित समझा । मैंने कहा 'मैं तो खेलाककी हैसियतसे ही सौन्दर्यकी व्याख्या करना चाहूँगा । इसलिए नहीं कि मैं सरककी कोई बहुत ऊँचा स्थान देना चाहता हूँ बरन् इसलिए कि मैं वही जपन अनुभवकी जट्टानपर सड़ा हुआ हूँ ।

उसने भीहाकी सिकाइकर और फिर डीसा करते हुए जवाब दिया बहुत ठीक लेकिन जा लोच सेसक नहीं है । वे भी ता अपने ही अनुभवके कुछ आचारपर लड़े रहेंगे और उसी बुनियादपर बात करेंगे । इसलिए उनक बारेम नाक-भी सिकोइलकी उकरत नहीं उन्हें भीचा देलना तो और भी प्रमत्त है ।

उसने कहाना जारी रक्खा इस बातपर बहुत कुछ निभर कल्ला है कि ज्ञान किस सिरेमे बात शुरू करेंगे । यदि पाठक भोटा वा बर्षकके सिरेसे बात शुरू करेंगे ता मायकी विचार-यात्रा बूसरे बंपकी होवी । यदि सेगकके गिरेसे सोचना शुरू करेंगे तो बात जलम प्रकारकी होवी ।

दोनों सिरेसे बात हामी। सीधे-सीधे-सीधे ही। किन्तु यात्राकी निष्पत्तिका कारण अलग-अलग रास्तोंका प्रभाव विचारोंका भिन्न बना देना।

दो यात्राओंकी परस्पर-भिन्नता अनिश्चय रूपसे परस्पर-विराधा ही है - यह सोचना निराधार है। भिन्नता पुरख मा हो सक्ती है बिरोधी भी।

यदि हम यथा-सम्य बात भी करें तो भी बख (एम्प्लिस) की निष्पत्तिका कारण विद्वान् भी भिन्न हो जायगा।

किन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रश्न किस प्रकार उपस्थित किया जाता है। प्रश्न तो आपकी विचार-यात्रा होगी। यदि इस विचार यात्राको रेंगिस्तानमें विचारणका पर्याय नहीं बनाना है तो प्रश्नको सही ढंगसे प्रस्तुत करना होगा। यदि वह उचित ढंगसे उपस्थित किया गया तो अगली साथी यात्रा उचित हो जायगी।

उसने मेरी तरफ ध्यानसे देखा। शायद वह यह देना चाहता था कि मैं उसकी बात समझता-सुन रहा हूँ या नहीं। शायद उसका यह विचार था कि मैं अत्यधिक इम्प्रेसिब महत्त्व उत्तेजित हो उठना एक बचन आदमीकी तरह हूँ। किन्तु मैं दान्त था। मरे मनकी कबल एक ही प्रतिक्रिया थी और वह यह कि कदाच यह समझता है कि मैं समस्याको ठीक तरहसे प्रस्तुत करना नहीं जानता। अन्तमें उसकी यह धारणा मुझे बहुत अप्रिय लगी। मैं उसकी इस धारणाका बहुत परस्पर जानता था। वह कई बार उस दुष्ट भी चुका था। अन्तमें वह बौद्धिक धारणों अपनेका मुझसे उच्चतर समझता था। उसका उद्देश्य उनके उद्देश्य-सम सम दोके बीचकी दूरी दूरिका सतत मान और इस मानक बावजूद हम सामान्य नैसर्गिक - परस्पर अनिष्टता और इसके विपरीत दूरीक उस मानक कारण मरे मनमें अन्तके विरुद्ध एक अन्त मारती हुई गौस और विज्ञान-विज्ञान - इन सब बातोंसे मेरे अन्त-करणमें कदाच

मेरे सम्बन्धोंकी भावना विषम हो गयी थी। मुझ उत्सव गमे थे। मैं केन्द्रको न तो पूजित स्वीकृत कर सकता था न उसे अपनी दिव्यमीसे हटा सकता था। इस प्रकारकी मेरी स्थिति थी। फिर भी चूंकि ऐसी स्थिति बहुत पहलेसे चली आयी थी इसलिए मुझे उसकी बाधत पड़ गयी थी। किन्तु इस अस्पष्टताके बावजूद कई बार मेरा बिचोम फूट पड़ता और तब केन्द्रकी आँखोंमें एक सामाजिक रोचनी दिखायी देती और मुझे समझे होता कि वह मेरी तरफ देखकर मुठकुराता हुआ कोई बहुरी चोट कर रहा है ॥ उस समय उसके बिच्छ मेरे हृदयमें घुसाका छोड़ा फूट पड़ता ॥

किसी-न-किसी तरह मैंने अपनेको सामंजस्य और मानसिक समुत्थनकी समाधिमें पाइ लिया यह बतानके लिए कि मैं उसकी बातें ध्यानपूर्वक सुन रहा हूँ। मैंने उसके तर्कों और मुक्तियोंके प्रवाहमें डूबकर मर जाना ही योग्यकर समझा क्योंकि इस रीतिसे या कबले मेरे आत्म-वीर्यकी रक्षा हो सकती थी। इस बीच मेरा मन दूर-दूर भटकने लगा। बाहरसे घायल ही बीर-प्रसन्न रूप रहा था।

मैंने ऐसे बहुत-से व्यक्ति देखे हैं जो हिमाच्छादित पर्वत-शिखरकी भाँति शान्त निःशब्द यम्भीर और मध्य समते हैं। किन्तु जब मुझे इस बातका महारा समझे होने लगा है कि असलमें ऐसे मोनोंका घिर लानी होता है। उनकी बाहरी शक्ति और यम्भीरता भीतरके लालीपनकी हाँकनेकी शीक है। मुझे ही देखिये न। मैं कैसी समाधि अयाकर उसके शर (शर नहीं केवल भार) सुन रहा हूँ।

किन्तु मेरा मन बाहर कड़ उड़ जा रहा है। जैसे शरीरसे कभी कभी हवाके झाके भीतर चले जायें उस प्रकार उसके कुछ भाग्य मेरे भीतर पुन जाते हैं। बाहर उसका गार प्रवाह जारी है जैसे कोई प्राकृतिक प्रवाह बह रहा हो। मैं केवल कुछ महरोको ही चीन्हे पाया हूँ। ऐसा हूँ मैं ! तब क्यों न मैं अपनेसे ही विरक्त हो उड़ूँ ?

बीर में बबवस्तीकी इस ध्यान-समाधिमें लीन होकर सुष ही से लुम्ब ही उठता हूँ ।

ऐसी लुम्ब अवस्थामें मैं सहसा उत्तेजित होकर उससे कहता हूँ 'घरा नाम से भाऊँ दो मिनटमें आता हूँ । यह कहकर मैं बरके मीतर सायब हा गया और पन्द्रह-बोस मिनट बाद हाथमें चायकी ट्रे लेकर वापिस आया । तब मुझे सहसा मुनावी विद्या विभिन्न ब्यक्तिमाके लिए सुजन प्रक्रियाएँ भिन्न-भिन्न हैं विभिन्न युगोंमें सुजन प्रक्रियाएँ बसग-बसग होती हैं । विभिन्न साहित्य-प्रकारोंके लिए भी सुजन प्रक्रियाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं ।

मैंने चायकी ट्रे टेबलपर रखी और हस्तेसं गम्भीरतापूबक कहा 'मुझे इस बातपर साधनके लिए अबकाध वा समय दो । क्या लयाल है ? तुम्हारी बात बहुत महत्वपूब है इसलिये ! उसन अपनी रजामन्धी बाहिर की ।

मरे बिस्से एक बजन बट गया । मैं छूटकारा पा गया । मैं थोड़ा-सा गूस मौ हुवा ।

उसने मेरी तरफ देखकर सिफ इतना ही कहा 'मैं चाहता हूँ कि साहित्य-सम्बन्धी बाबबाएँ वास्तविक साहित्यमें बिस्सेपन्के जाबापर बनानी आवें । बिध प्रकार बिज्ञानमें इण्डबजानसे डिबनजनपर आया जाता है - तथ्येकि संग्रहसे उनक बिस्सेपन-द्वारा उनके सामान्यीकरणस अनुसार और तिफ्तय तिकासे जाते हैं - उसी प्रकार साहित्यमें इण्डबजानसे डिबनजनपर क्यों न आया जाय ? इण्डबजानका क्षेत्र केवल हिन्दी साहित्य तक ही सीमित क्यों रहे ? उपम्यास क्या है, यह पढ़ात समय हम बिरबके प्रमुग्र उपम्यासोंके उपरान्त ही यह ठहरायें कि उपम्यास किसे कहते हैं और उसका सित्य क्या है अथवा उसक प्रयाण अंग क्या होते हैं---इसी प्रकार साहित्यमें सौन्दर्य किसे कहते हैं इस प्रस्नके ठहापोड़का क्षेत्र केवल हिन्दीकी आत्मपरक कविता और हिन्दी साहित्य तक सीमित न रक्वें ।

यदि हमने धैर्य बिस्तृत किया तो हम पायेंगे कि सौन्दर्य-सम्बन्धी हमारी परिभाषा अस्पष्टताके शोषसे अथवा अज्ञानाधिक्य और अतिव्याप्तिके शोषसे रहित होगी। मुझे गहरा सम्बेह है कि भावकसकी सौन्दर्य-परिभाषा (यदि उसे व्याख्या करें तो) केवल कविता और वह भी आत्मपरक कविता की विशेषताओंके आधारपर बनायी जा रही है। सौन्दर्य-सम्बन्धी इन व्याख्याओंका प्रकट या अस्पष्ट उद्देश्य भावकी वाच्य-वृष्टिा क्रियेस है किन्तु ये व्याख्याएँ कुछ इस प्रकारसे कुछ इन ठाँवों और धारण बनायी जाती हैं मानों वे सामग्रीम सत्यकी सांख्यिक स्पष्टताएँ हों। इस पीछ और पाँस्वरकी जरूरत नहीं। यह अर्थज्ञानिक बुद्धि है। अथवा साहित्यिक सौन्दर्यसम्बन्धी मीमांसा करनी है तो आपको अपनी बुद्धि केवल आत्मपरक कविता — वह भी भावकसकी कविता — तक ही सीमित नहीं करना चाहिए। और यदि ऐसी ही व्याख्या करनी है तो यह पीछ और पाँस्वर खान देना चाहिए। मुझ इन पीछसे निडर है।

पूरी बातचीतमें मेरा स्वर एक मोटाका था। इन्धम तो यह थी कि मैं तीन पादकी भूमिका अच्छा न कर उसकी बातोंको छिट करूँ। उसपर प्रत्याक्रमण करूँ। मुझ सम्बेह हो रहा था कि यह पण्डितताके शोषसे सौन्दर्य-सम्बन्धी बात करना जाह रहा था। मुझे इस विषयको जागे बढ़ानकी इच्छा ही नहीं थी। अहरेके सामने क्या बोल बजायें !

मैंने बात अचानके छिपे कहा 'और क्या बजा बला हुआ है ?

उसने कोई जबाब नहीं दिया। यह क्या कहता !

हम उठनेको हुए। उठे और चलन लगे। मैंने कहा मैं तुम्हें वहाँ तक पहुँचा देता हूँ।

तबतक धाम ही चुकी थी। मेरे अरके सामने सज्जेद बम्पाके फूल उज्ज्वल बीपों-जमे पिले हुए था। बाठावरनमें जागकी बन्ध गन्ध फैल रही थी। जग अपना छाँवला प्यार-भरा आँसु पतार रही थी।

बीच ही में हमारे बिम्बूज अहृष्टके भीतर एक मन्दिर पड़ता था ।
उसने कहा आजो बोड़ी बेर बैठें ।

मेरे भीतर बाबाबाबकी मस्तो छाने सगी । बदाके रोम पुलकित हा
रहे थे । बाँधोंमें फिरमोंकी मुनहसी धारा-सो बहुत लयी । बाहुआकी
मांस-वेदियोंमिने माला कोई मद्या बहकर, चौड़कर हुशयमें घराब बन
रहा था । मात्र प्राकृतिक-पारीरिक आनन्द मुझपर हाबो हो रहा था ।
एक सम्मत् स्फूर्ति एक सहज सकित-बेतना मरी बाँधोंको निमल बीर
दीप्त कर रही थी ।

किन्तु मेरा मित बैस ही सिबिल घालत बीर पायागबन् बैठे था ।
मैं अपनी पारीरिक सकितके आनन्दस ही चमत्कृत था भीतरस मन्त्रित
बीर मन्त्र-मुग्ध ।

उसने धीरे-धीरे बहुत ठण्डक-स कुछ बहना गुक किया । मुझे लगा
कि बढकी कोई सिल मेरी लबापर फरी जा रही है । इम बीच उसके
माद-ग्रवाहमें मेने कोई परिचित नाम सुना । मन चौककर पूछा
'क्या ?

"हमने कस तप कर लिया कि इस गरमीमें बिबाह कर लेंगे ।"

मेने बहुत बिस्मयसे पूछा 'क्या !'—'किससे ?

चेन्नेसे ।

कौन बेटी ?"

बह कुछ नहीं बोला । किन्तु धीरे-धीरे मनमें एक इगदी आमा
प्रभावका रूप घारण करती गयो ।

मुझे आश्चर्यका इतना बड़ा पस्वा कभी नहीं लगा था । बेचब एना कर
भी सक्ता है ! असम्भव ! ता उनक बारेमें मरा मारा निरीक्षण-परीक्षण
घालत हो गया — एक ही मन्त्रमें ! अन्धा हुआ कि बह गमत हो गया ।

मेरा सारा बेहतर आश्चर्य और आनन्दको सहरोंमें बैस गया । मन

मजाक-मजाकमें कहा 'तो इसीलिए तादात्म्य और तबाकापिछाकी बात कर रहे थे। क्यों हजरत ?

उसने लड़ाकसे बचाव दिया केवल उटस्य व्यक्ति ही उदाकार हो सकता है, समझे ?" उसने गम्भीरतासे कहा। उसके स्वरमें अतिरिक्त बल था। किन्तु उसके इस वाक्यका मैं अर्थ नहीं समझ सका। बसझमें मुझे इतना आनन्द हुआ था कि मैं केन्द्रबन्धको विपका किया। उसका चेहरा लाल और क्षापक परम हो गया था। लम्बासे परम। ऐसी स्थितिमें मैं भला उसके वाक्यका अर्थ कैसे समझ सकता था ?

समय मुबारता गया। उसे अपनी विश्वसीमें बितोप सफलता नहीं मिली। 'मारो - जाओ हाथ मत जाओ ! के इस धमामेमे उस-जैसे जादमीकी क्या बलती !

समयने हम दोनोंके चेहरोपर सूक्षेपम और अनासाकी काठिक पीठ थी थी। बुनियाकी बाँधोसे दूर, अकेकेपनके अँबेरेमें हम दोनों अल्प-मसग पृष्ठीक दो छोरोंपर ससि है रहे थे।

इसके बाददूर बब-बब मैंने उससे अपने भेदबाये उसने तुरन्त भेद विभे। थाव ही यह भी किया कि जब कभी पकरत ही मैं पठते अवस्य गान किया कर्के। किन्तु नाँव बर्ष हुए मैंने उसे न कोई पत्र किला न अपने भेदबाये। न मुझे उसके बारेमें कुछ मानूम हुआ न समन ही मुझे कुछ किया।

---मानो किसी तात्काममें-से माक निकलती हो भाफकी अँधी सटती हिलकाटती सहरे एक मनुष्याकार घास कर अँधी अँधी हाठी हुई आपके पास आने लवती होंं ता आपका कैसा बनेगा ? मुस तो डर लगेगा। आपकी ?

जब मुझे यह सूचना मिली कि कन्वव इसी माईसे यहाँ आ रहा है,

तो मुझे भी रीता ही लगा। मुझे लगा कि एक भाक मनुष्याकार धारण कर मेरे पास-पास आती जा रही है। मैं मातङ्गित हो उठा।

पहले तो मैं इस उलझनमें रहा कि उसका स्वागत करने स्टेशन बाईं या बायेंकी मनहूसियत दूर करनेके उपाय खोजूँ। किन्तु ब्याकुल पत्नीने जब धरका विद्रूप रूप करनेका आस्वासन दिया तब मुझे बोझी-सी राहत मिली। अगर केसबको मेरे यहाँ आना ही था तो तारसे पहले सूचना देनी थी जिससे हमें बड़ी सहूलियत हो जाती। संकट-कालमें मेहमान दुस्मान होता है। विशेषकर वह जिसने मुझे पहले बहुत मज्जी सुपर, एम्पन और मुख्यवस्त्र स्मितमें देखा हो!

बेशक बहुत बरक गया था। तमाम बाळ सकेर हो गये थे। बहुरेपर गहरी छकीरें बन गयी थीं। वह मुझका हो गया था। इसने बाबजूद उसका स्वाग्ध्य बहुत अच्छा था। उसका बरा बरा हुआ था। मुबारकी मोय-नेशियां बूध थीं। समता था कि पिछले छत्र-गाठ साकसे वह बरक बैठक मारता आ रहा हो। सायब उसने तैरनेकी अच्छी-प्रासी भावत बाल भी थी। उदमहीन तो वह कमो नहीं रहा था। किन्तु फिर भी अब उसमें पड़सेसे अधिक स्फूर्ति थी। उसकी प्रद्यान्त-गम्भीरता कम नहीं हुई थी लेकिन बोसता पयाथा था। उसकी धारोरिक हलचल स्फूर्ति पुक्त प्रतीत होती। मुझे लगा कि उसने अपनी परिस्थितियोंका ग्यावा मबंबूतो और अधिक आरम-बिरबाससे मुकाबला किया है। वह काष्टी हैसता भी था प्रश्रियां भी कसता था। मुझ लया कि उसका अभ्ययन भी विस्तृत हो गया है। अगर उसने बाओ पड़ा है। मुग बराबर यह मान होता रहा कि मैं पिछड़ गया हूँ और वह मुझसे बहुत आगे बढ़ गया है।

जब हम दोनों भोजनको बैठे तो बनियानके भीतर उसके गोरे सुपर बसे हुए लटोरको देगकर मैं सप्र रह गया - प्रमत्त नहीं हुआ। गोरे

महाक-महाकमें कहा 'तो इसीलिए तादात्म्य और तदाकारिताकी बात कर रहे थे। क्यों हजरत ?

उसने लड़ाकसे जबाब दिया 'केवल उच्चस्व्य व्यक्ति ही तदाकार हो सकता है। समझे ?' उसने गम्भीरतासे कहा। उसके स्वरमें अतिरिक्त बल था। किन्तु उसके इस वाक्यका मैं बच नहीं समझ सका। अस्तमें मुझे इतना आनन्द हुआ था कि मैंने कंधाको थिपका किया। उसका चेहरा लाल और घामर गरम हो गया था। लज्जासे गरम। ऐसी स्थितिमें मैं भला उसके वाक्यका अर्थ कैसे समझ सकता था ?

समय मुझरता गया। उसे अपनी जिम्दगीमें विशेष सफलता नहीं मिली। 'मारो - खाओ हाथ मत जाओ। के इस जमानेमें उठ-बैठे आदमीकी क्या जसती !

समयने हम दोनोंके चेहरोंपर मूसंपन और जनाघाती काश्मिष् पीठ ही थी। दुनियाकी भाँसोंसे दूर, जकैतपनके अँबेरेमें हम दोनों अल्प अल्प पुष्पीके दो छोरोंपर सँठ के रहे थे।

इसके बादमूर जब-जब मैंने उससे रुपये भँववाय उसने मुरस्त भेज दिये। घाब ही वह भी लिखा कि जब कभी बकरत हो मैं उससे अवश्य माँग लिया करूँ। किन्तु पाँच वर्ष हुए मैंने उसे न कोई पत्र लिखा न रुपय भँगवाये। न मुझ उसके बारेमें कुछ माकूम हुआ न उसने ही मुझे कुछ लिखा।

''मानो किसी ताकाबमेंसे भाक निकलती हो भाककी ऊँची उट्टी हिमकोरती सहरें एक मनुष्याकार धारण कर ऊँची-ऊँची होती हुई आपके पास आने लगती हों तो आपका कैसा जनेगा ? मुझे तो डर जनेगा। आपकी ?

जब मुझे यह सूचना मिली कि बेघब इसी पाँससे मही आ रहा है,

तो मुझे भी बीता ही लगा। मुझे लगा कि एक भाक मनुष्याकार धारण कर मेरे वाम-यास झाड़ी का रही है। मैं आतंकित हो उठा।

पहले तो मैं इस उलझनमें रहा कि उसका स्वागत करने स्टेशन बाईं का बरकी मनुष्यसिद्ध बुर करनेके उपाम खोजूँ। किन्तु बवासु पत्नीने जब बरका बिद्रूप रूप करनेका आश्वासन दिया तब मुझे थोड़ी-सी राहत मिली। अगर केमबको मेरे यहाँ आना ही था तो ठारसे पहले सूचना देनी थी जिससे हमें बड़ी सहूलियत हो जाती। संकट-कालमें मेहमान बुझना होता है। बिचोपकर वह जिसने मुझे पहले बहुत अच्छी सुघर सम्पन्न और सुखवस्थित स्थितिमें देखा हो!

बराब बहुत बरक गया था। सामान बाँस सकेर हो गये थे। जहरेपर पहरी लकौरे बन गयी थीं। वह बुद्धा हो गया था। इसके बावजूद उसका स्वाग्ध्य बहुत अच्छा था। उसका बय मरा हुआ था। मुजाबोंकी मांस-मेसिवाँ बूढ थीं। समता का बि पिछले छह-नाठ सालसे वह दण्ड बैठक मारता आ रहा हो। चापब उसने ठैरनकी अच्छो-दासी आदत गाल की थी। संयमहीन तो वह कभी नहीं रहा था। किन्तु फिर भी अब उसमें पक्षेसे अधिक स्फूर्ति थी। उसकी प्रद्याप्त-गम्भीरता कम नहीं हुई थी ऐकिन बोमता जयादा था। उसकी धारोेरिक हलचल स्फूर्ति सुबन प्रतीत होती। मुझे मया कि उसने अपनी परिस्थितियोंका जयाप्त मर्जबुतो और अधिक आरम-बिरवासे मुजाबला किया है। वह काझी हैमता भी था कृशियो भी कसता था। मुझे मया कि उसका अध्ययन भी विस्तृत हो गया है। इधर उसने काझी पढ़ा है। मुझ बराबर यह मान होता रहा कि मैं पिछड गया हूँ और वह मुझ बरुन माये बड़ गया है।

जब हम दोनों भोजनको बैठे तो बनिवाजके भीतर उसके गोरे सुघर बसे हुए धारीको देगकर मैं सन्न रह मया - प्रमन्न नहीं हुआ। गारे

घरीरपर एक बड़ा सडेर भूरा चेहरा ! किन्तु बहुत खूबसूरत मालूम हुआ । निश्चित रूपसे ही बिस्ताकी रेखाएँ उसके चेहरेपर थीं । वे काफ़ी प्यारी भी थीं । लेकिन क्या वे बिस्ता की थीं ? या बिस्तन की ? मैं इसका निश्चय नहीं कर सका ।

भोजनके दौरान उमने एक बड़ी पडेहार बात कही । उसने हाथमें कीर लेकर मेरी तरफ़ देखते हुए कहा तुममें और मुझमें एक बड़ा भेद है । बिचार मुझे जलेशिन करके क्रियावान् कर देते हैं । बिचारोंको तुम तुरन्त ही संवेदनाओंमें परिचय कर देते हो । फिर उन्हीं संवेदनाओंके तुम बिच बनते हो । बिचारोंकी परिचय संवेदनाओंमें और संवेदनाओंकी बिचोंमें । इस प्रकार तुममें ये दो परिचयियाँ हैं । अगर तुम्हारी कविताएँ किसीको जलसो हुईं भाकूम हीं तो तुम्हें हठात् नहीं होना चाहिए—मैं तुम्हारी कविताएँ ध्यानसे पढ़ता हूँ ।

मैंने डरते-डरते पूछा 'मेरी कविताएँ तुम्हें अच्छी लगती हैं ?

'उनमें और सख़रकी सख़र है । किन्तु मैं उन लोकोप्य समर्थक नहीं हूँ जो सख़रके नामपर, सख़रके लिए 'कॉन्टेस्ट' (कागज-तलब) की बलि दे देते हैं ।

फिर एक कम्बे समय तक हम दोनों चुप रहे । दो व्यक्ति-बिन्दुओंके बीचकी दूरी बढ़ती रही । एक सज बाव दो बिन्दुओंके बीचों-बीच समान रूपसे सीम दूरीपर एक मध्य-बिन्दु-अधु बना । उस अधुसे एक हाथकी तरफ़ एक सीधी अधु-रेखा निकली । उसी बिन्दुके दूसरे हाथकी तरफ़ दूसरी सीधी-सरल अधु-रेखा फूट पड़ी । दोनों रेखाएँ आगे बढ़ने लगी और उसने हम दो व्यक्ति-बिन्दुओंको एक अधु प्रसस्त माग-रेखा-द्वारा जोड़ दिया ।

मैंने किसी आकस्मिक जल्साहसे कहा 'मैंने ध्यानसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बलाके तीन सज होते हैं । यदि उनमें जग-ती भी भीतरी कनजोरा रही तो — चाहे वह बौद्धिक आकस्मकी कम्बोटी हो या संवेदन समताकी हो — कृतिपर जलका तुरन्त प्रभाव होया ।

जो क्रेष्टीसी अनुभवको व्यक्तिगत पीड़ासे पृथक् होकर बर्बाद जगसे छटसक
 होकर अनुभवके भीतरकी ही संवेदनाओं-द्वारा उत्सन्नित और प्रक्षेपित
 होगी। वह एक बर्बमें वैयक्तिक होते हुए भी दूसरे बर्बमें निताम्न
 निर्बैयक्तिक होगी। उस क्रेष्टीसीमें अब एक साम्प्रतिक जरेस्पकी संपत्ति
 आ जायेगी। इस साम्प्रतिक जरेस्पके द्वारा ही वस्तुतः क्रेष्टीसीका रूप-रंग
 मिलेगा। किन्तु यह होते हुए भी वह क्रेष्टीसी यथावत् भोग्ये गये वास्तविक
 अनुभवकी प्रतिरूपिणी नहीं हो सक्ती। वैयक्तिकसे निर्बैयक्तिक होना ही-एक
 ही उस क्रेष्टीसीने कुछ ऐसा गवीन ग्रहण कर लिया कि जिससे वह स्वयं
 भी वास्तविक अनुभवसे स्वतन्त्र बन बैठी। क्रेष्टीसी अनुभवकी कल्पना है
 और उस कल्पनाका अपना स्वतन्त्र विकासमान व्यक्तित्व है। वह अनुभवसे
 प्रसूत है इसलिए वह उससे स्वतन्त्र है।

कलाका यह दूसरा क्षण है। मैं कहना चाँही रक्खा, किन्तु इस
 क्रेष्टीसीको छन्द-बद्ध करने या विधित करनेकी प्रक्रियाके दौरानमें ही वह
 क्रेष्टीसी विपन्नकर उस प्रक्रियाके प्रवाहमें बहने लगती है। उस आदिम
 प्रवाहमें क्रेष्टीसीके सारे रंग बुलन्दर बहने लगते हैं। सारा व्यक्तित्व और
 उसकी समस्त शक्ति उस क्रेष्टीसीके बहते रंगोंके साथ बहने लगती है और
 छन्द-बद्ध होनेपर कला विधित होनेपर जो कृति या रचना तैयार होती है
 वह कृति या रचना कलाके दूसरे क्षणकी क्रेष्टीसीकी पुत्री है, प्रतिरूपिणी
 नहीं। इसीलिए मूक क्रेष्टीसीसे उसका व्यक्तित्व स्वतन्त्र विधित और
 पृथक् है। कलाका यह तीसरा या अन्तिम क्षण है। इन तीन क्षणोंके
 बिना कला असम्भव है। इन तीनों क्षणोंकी विकास-मार्तिके अपने-आपने
 अलग नियम हैं।

मैंने कहना चाँही रक्खा 'यदि तुम्हें इस प्रश्नका उत्तर पाना है कि
 सौन्दर्य क्या है अथवा सौन्दर्य-प्रतीति क्या है सौन्दर्य-अनुभव क्या है और
 वह किस प्रकार वास्तविक अनुभवसे भिन्न है तो तुम्हें कलाके इन तीन
 प्रधान क्षणोंके मनाविज्ञान ही का अध्ययन करना होगा। इनका अध्ययन

इसीलिए क्रेन्स्टीमीमें संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदनाएँ रहती हैं। कृतिपनरको लगातार महसूस होता रहता है कि उसका अनुभव सभी के लिए महत्वपूर्ण और मुख्यवान है। तो मतलब यह कि योकनृत्व और बंधकत्वका इन्ट एक समन्वयमें भोग होकर एक दूसरेके मुर्गीरा भावना-प्रधान करता हुआ सूजन प्रक्रिया माने बड़ा होता है। दण्डना ज्ञान और मोक्षनाको संवेदना परस्पर-विलोम होकर अपने-परे उठनेकी सीमाको प्रोत्साहित करती रहती है। इस प्रकार सूजन-प्रक्रियाके विद्युत्में संवेदनात्मक यत्न प्रतिबिम्बित होता-या प्रतीत होता है। दूसरे घट्टोंमें संवेदना-क स्थितिगत पहले रंग दृष्टिके स्थिति-मुक्त रूप परिलक्षित होकर प्राति निधिक हो उठते हैं। मेरा एसा खयाल है। कम्पक दूसरे क्षणमें उपस्थित क्रेन्स्टीमीकी इकाईमें संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना कुछ इस प्रकार समायी रहती है कि लयक उन्हें धर-बद करनेके लिए तत्पर हो उठता है।

“यहूँ कम्पक तीसरे क्षणका आरम्भ होता है। अब मजा देखिए। मरी बात ध्यानसे सुनना।

अब यहीसे एक नये संघर्षकी बहानी शुरू होती है। केवल क्यों ही क्रेन्स्टीमी घट्टोंमें व्यक्त करने लगता है। क्रेन्स्टीमीके इस घुलन लपटे हैं और सतत प्रवाहित होने लगते हैं। व्यवन करनेक दौरान प्रकट करनेकी प्रक्रियामें क्रेन्स्टीमी बदलन लपटी है—एसा क्यों होता है ?

कुछ दर तक चुपी रही। वह जाने नहीं वाल खफा। जमाने प्ररन उपस्थित कर दिया जकाब नहीं के सन्न। वह मेरी लच्छ बंधने लगा। बापकी भावे जमानके लिए मैंने कहाना शुरू किया—

तोता यह है कि क्रेन्स्टीमीको धर-बद करनेकी प्रक्रियामें बहुत-से नये ताब धरने का मिलते हैं। ये ताब जसे लगातार संघोषित करते रहते हैं। ध्यान रखना कि यह क्रेन्स्टीमी अनुभव प्रसून होते हुए भी अनुभव-विम्बित होती है। इस क्रेन्स्टीमी वस्तुत एक भावनात्मक पहरेप लमावा

जनक सम्बन्धित बीबनानुभवसे उत्पन्न भावों और स्वरोसे मुक्त होकर इतना अधिक बदल जाता है कि मेलक उस पूरी ऊँटीसीको एक नयी रोशनीमें देखन लगता है। मरा मतलब है मूल कैम्प्रीकी मम को छिपुना हुआ एक बर या अब फैलकर एक पर्सपेक्टिवका रूप धारण करने लगता है। इन पर्सपेक्टिवसे सम्बन्धित मूल मम धर-बद होनेकी प्रक्रियामें बदल जाता है। वह पुराना मम न रहकर अब नया बन जाता है। उसमें नये ममस्वरूप आ जाते हैं। धर-बद हालकी प्रक्रियाके दौरानमें जबतक उस ममम खोज और बल कायम है तबतक वह नये रूप समेटता रहेगा। किन्तु जब वह कुछ जायेगा तब मति बाह हो जायगी उद्देश्य समाप्त हो जायेगा। कबिता नहीं पूरी हो जाना चाहिए। यदि वह पूरी नहीं हुई तो ममके साक्षात्कारमें कहीं कुछ कमी रह गयी बिद्या-ज्ञान ठीक नहीं रहा है, उद्देश्यमें कुछ कमजारी आ गयी है - एसा मानना होगा।

यहाँ मैं एक गया। हमसे अधिक मैं कुछ भी नहीं कह सका।

रात काफी हा मयी थी। सकॉपर रोशनीके बावजूब अँधेरा बल गया था। मूनापन बाक रहा था। हवा बेहसे बिपक रही थी। मम बहुत गया था। मेरा मित्र बुद था। क्यों था ?

बिन्दगी ही ऐसी है। कोई बिचार किसीके कहनेसे अपने सुरके कर्नसे मनमें उठि नहीं होता। मेरा मित्र अब मुझसे बिदा हो गया है। अपना मतको प्रकट न करते हुए अब वह बहुत दूर चला गया है। उसके साथ दिन अच्छे बने।

बहुत दिनों बाद उसकी बिट्टी आयी। बिट्टी नहीं थी वह धीतिस थी। बैबल अस्तमें 'मायीकी प्रणाम बच्चोंको प्यार आदि किन्ता था। मैंने बिट्टी नहीं गयी। टेबिलके बराबमें बाल थी बिस्ते कि फुरतके बपु अघ्ययन कर सकूँ। किन्तु मे समय मिळनपर भी उसे पढ़ नहीं पाया। इतनेमें लमका रिमाइण्डर भी आ गया। मैंने उसकी भी बराबमें बाल बिदा।

बसठमें उन दिनों भरम बीमारियोंने कई बिस्तर बिछा रखे थे । जिन्हायोंमें मुझ उन बाठोंका तालीम लेनी पड़ी है कि जिन बाठोंको मेरे स्वभावके विच्छन्न बड़ा जा सकता है । फलतः स्वभाव-विच्छन्न बाठोंकी अनिश्चित तालीम लेनकी भीषण प्रक्रियामें मेरी लबीयत भी तराब हो गयी ।

फिर एक रातको जब करारहें सोयी हुई थीं और घरके आनेम रखा दीया आन्ध रोधमो फैला रहा था तब मैं अचान्त घनसे चिन्दाक आरेमें साधन लगा । मैं बहुत उदास हो उठा । मया कि मरी जिन्हायी असफलता को बाढ़ोंमें पड़ी हुई एक वेवस भाँव है ॥

ऐसे ही घयासोमें डूबता-उतराता मैं अन्तर्राष्ट्रीय घटना-बाढ़ोंकी लसबीरत तक पहुँच गया । अलवार-गधीस होनेके नाते मैं मये बिचारोंको टीप लिखा करता था । बागवकी तलासम टेबिलकी बराब लोमी लो जसमें मिशका पत्र और पत्रका रिमाइण्डर दोनों मिले । मिशकी मारने विस हसका क्रिया । मैं उसकी चिट्ठी कई बार पढ़ गया । बह चिट्ठी एक टण्डे दिमाग की जपन थी । फिर भी मुझे बह गुलाबक इनसे ठर मामूम हुई । कहना न होया कि पत्रकी पुस सख्या कोई पत्रचीस थी । बारोक सुडोस मदार, मुन्दर-स्वच्छ लिखावट और जहाँ-आवश्यक हों वहीं-वहीं पीरे—इस प्रकार से घामायमान बह चिट्ठी थी या चिट्ठीका बाप 'चिट्ठा पा—महीं कह सकता ।

दिन बीसते गय और अब मेर सामन मर जबायका जबाब पड़ा हुआ है । केराबन बहुत टाटसे लिखा है—

'... यह सच है कि मध्य-बड़ होमकी प्रक्रियाओंमें छैष्टैती बदलने लगी है । यह कैय होता है ?

मरे घयासस हसके दो कारण है । दोनों कारण एक दूसरेसे जुड़े हुए हैं ।

'जम्पारा तीसरा घण जमाजा आगमता महकबूध और पुण धन है ।

यहसि कैस्टी साहित्यिक कलात्मक अभिव्यक्तिका रूप धारण करने लगती है ।

यहसि घण्ट-साधना शुरू होती है । घण्टक अपने ध्वनि-अनुपंग होते हैं जिसमें ध्वनि और ध्वनि दोनों शामिल हैं । कलाकार अपने हृदयके तत्व के रंग रूप आकारके अनुसार अभिव्यक्तिका रंग-रूप और आकार तैयार करना चाहता है । इसलिए घंटे अपने हृदयकी भाव-अभिव्यक्ति, ध्वनिकी अर्थ-ध्वनियोंसे मनबलत तुलना करनी पड़ती है ।

इसके दो परिणाम होते हैं (१) भाव-अभिव्यक्तिका उपलब्ध ध्वनि-ध्वनियोंके कटवरेमें केंद्रात्मक पदरत जिसके फलस्वरूप काउन्टीसे मनस्तल अपना मौलिक और मूल तंत्र स्थापन कर एक नये स्वरूपसे सम्बन्ध आकारमें प्रकट होते हैं । कई कवि ठा भाषाकी समक और लघुआइके लिए अपने भाव-तत्त्वोंका अभिधान भी कर देते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि घण्ट-बद्ध होनेकी प्रक्रियामें कैस्टीकी ही काट-काट होने लगती है । (२) किन्तु इसके विपरीत दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि अभिव्यक्ति-साधनाके दौरान स्वयं अभिव्यक्ति कैस्टीको सम्यक् और परिपूर्ण करने लगती है । कैस्टी अपनेको प्रकट करनेके लिए समानार्थ वाचक ध्वनियोंकी जाती है । भाषा एक जीवित परम्परा है । ध्वनियोंमें एक सम्बन्ध है । ध्वनियोंको धर्म-सम्बन्ध है वह कैस्टी-द्वारा उद्बुद्ध होकर नयी भाव-आधारें बहा देता है । ये भाव-आधारें कैस्टीकी समीपवर्ती भाव-आधारें हैं । ये कैस्टीके व्यक्तकी और भी विस्तृत कर देती हैं । उसके मौलिक तंत्रकी और भी केंद्रा देती हैं । इन भाव-आधारोंमें अनेकों नये-पुनरे अनुभव आने-परामे भाव सब प्रकाशित होते रहते हैं । कैस्टीके काल्पी व्यपपत्ता तो उनसे बद्ध जाती है साथ ही उनके द्वारा कैस्टीको एक नया पक्षेन्द्र प्राप्त हो जाता है । इस बंधेन्द्रसे संयुक्त होकर कैस्टी एक तेजोवसयमें चमकने लगती है । कैस्टी अब पूर्णरूपसे सार्वभौम हो जाती है ।

देना क्यों ? भाषा सामाजिक निधि है । ध्वनिके पीछे एक अर्थ

परम्परा है। य अर्थ जीवनानुभववास चुके हुए हैं। क्रेष्टीसी अथन अनुकूल धर्मोंमें स्थित अर्थ-स्पर्धनको उद्बुद्ध करती है। इन धर्मोंके बीचमें क्रेष्टीसीको रिट करना पड़ता है। इसलिये क्रेष्टीसीका मौलिक लेख काफी बट छेन जाया है। धर्मोके पीछेकी अथ परम्परा क्रेष्टीसीके मूल रंगको छेन देती है। उसके आधारमें परिवर्तन कर देती है, उसकी मौलिक पहचानता अर्थन अर्थनयन सधम भी सराज देती है। कई कवि धर्मोंकी अथ परम्परास बाधछत्र होकर मापानी सञ्चर्य और अथनके निर्वाहके लिए प्रन्टीकरणके हेतु मातुर भाव-धर्मोंको ही बाट देते हैं।

इसके विपरीत क्रेष्टीसी-द्वारा उद्बुद्ध धर्मोके अथ-अनुपंग और उनसे अथन अथन मयी भाव धारार्थे बहा देत है। ये भाव-धारार्थे क्रेष्टीसीके अनुकूल और समीपवर्ती होती है। उन भाव धारार्थोंमें अनेकां नये-पुराने अनुभव और अथन-धरार्थे भाव होनेसे क्रेष्टीसीकी अथमताका बिस्तार हो जाया है। भाव ही इन बिस्तृत धर्मोंमें ये भाव-धारार्थे क्रेष्टीसीपर और क्रेष्टीसी इन भाव-धारार्थोंपर क्रिया — प्रतिक्रिया करने लगती है। इस क्रिया प्रतिक्रियासे क्रेष्टीसाका क्षेत्र और बिस्तृत हो जाता है। अनुभवको पतपेविश्व प्राप्त हो जाता है। क्रेष्टीसीके भीतरके मूल अर्थन और धरार्थे बिस्तार कर उठना है।

दुसरे धर्मोंमें, कर्माके धरार्थे धरार्थे सृजन प्रक्रिया औरमें गतिमान होती है। कर्माकारको धर्म-सापना-द्वारा नये-नये अथ-अर्थन मिलने लगते हैं। पुरानी क्रेष्टीसी अथ अर्थन सन्धम समूह और साधननीन हो जाती है। यह साधननीनता अर्थन-अर्थन प्रयत्नके दौरान धर्मोंके अथ-अर्थन-द्वारा पैदा होती है। अथ-अर्थन-धर्मोंके पीछे साधननिक सामाजिक अनुभवोंकी परम्परा होता है। इसलिये अथ-परम्पराएं न कर्माके मूल क्रेष्टीसीको बाट देनी है। सराजती है रंग उड़ा देती है, बरन् उसके साथ ही वे नया रंग बना देती है। नये मार्ग और प्रवाहासे उसे सन्धम करती है। उसके अर्थन धरार्थे बिस्तार कर देती है।

इसीलिए अभिव्यक्ति-प्रयत्नके दौरान कविको नये साक्षात्कार होने सयत है। एक ओर मूल क्रेष्टिटीके मूल-ममकी अभिव्यक्तिपर उस सम्पूर्ण व्यक्तित्वका केन्द्रीकरण हो जाता है तो दूसरी ओर इस केन्द्रीकरणके फलस्वरूप उसके व्यक्तित्वका विस्तार होने लगता है। उसे मय-नये तात्पार हान समते है। एक साक्षात्कार कई भाव-सात्याका उद्घाटन करता है। एक साक्षात्कार कविको दूसरे साक्षात्कार तक पहुँचा देता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया चाल रहती है।

इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाके पीछे मायाकी अथाह अलवरत साबवा धरित है। माया क्रेष्टिटीको काटती-छाटती है और इस प्रक्रियाक विपरीत क्रेष्टिटी मायाको सम्पन्न और समृद्ध भी करती है।

कविकी यह क्रेष्टिटी भायाको समृद्ध बना देती है, उसमें नये अथ अनुपम भर देती है शब्दको नय विभ प्रदान करती है। इस प्रकार, कवि भायाका निर्माण करता है। जो कवि भायाका निर्माण करता है, विकास करता है वह तिसम्बेह महान् कवि है।

‘इस प्रकार कलाके तीसरे धाममें मूक इन्द्र है—भाया तथा भावके बोध। इन दोनोंकी परस्पर प्रतिक्रिया और संघर्ष बहुत उससे हुए होते हैं और वे उन दोनोंको बढ़ाते रहते हैं। इन दोनोंमें संघोषण हाता जाता है। वह इन्द्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सृजनशील है। भाया एक परम्पराके रूपमें क्रेष्टिटीके मूल रंगको विस्तृत कर देती है किन्तु साथ ही उस क्रेष्टिटीमें संघोषण भी उपस्थित करती जाती है। साथ ही क्रेष्टिटी अपने मूल रंगोंके निर्वाहके लिए, अपने मूल रंगोंकी अभिव्यक्तिके लिए, भायापर बलाव लगती है, उसके धर्मों और मुद्दाबर्षोंमें नयी अथमता नयी अथ-तामता नयी अभिव्यक्ति धर देती है। कलाके तीसरे धाममें यह महत्त्वपूर्ण इन्द्र है।

‘इसीलिए कलाकारको यह महसूस होता रहता है कि जो उसे कहना था वह पुन रूपसे नहीं कह सका और ऐसा बहुत कुछ कह गया जो

सुझें, उसे माझूम नहीं या कि कह जायगा !! क्या यह भावना तुम्हें नहीं
होती ?'

केसवके पत्रके मैन कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किये ! पत्र पढ़कर मुझे
दुःख भी हुआ सुख भी । दुःख इसलिए कि इस बीच मैं स्वयं बहुत उलझ
गया था और सुख इसलिए कि कसबने मेरी बात बहुत आगे बढ़ा दी ।
मेरा उदाहृ है कि केसव इन बातोंका अब परीक्षण और पुनःपरीक्षण
करता होगा ।

निस्सन्देह, केसव एक विश्वस्य आदमी है । किन्तु सबसे बड़ी बात है
कि वह मेरा मित्र है । निस्सन्देह उनके साथ कोई नया काम नुक करना
आवश्यक है । मुझे बड़ी मन्द होगी ।



एक लम्बी कविताका अन्त

कल ही मैंने एक लम्बी कविता खत्म की। उसका अन्त मुझे चिबिल-सा जान पड़ा। उसके अन्तपर खिन्ना अभिक सोचता गया मुझे लगा कि उस कविताकी और बढ़ना होना कि वह अपने आप ही बड़ जायेगी। मुझे उसकी सम्भावित सम्बाई-बौझाईकी देख भव-सा जान पड़ा। भव इसलिए कि इतनी प्रदीपता हमारे यहाँ बण्डी नहीं समझी जाती। दूसरे यह कि उसके (मासिक पत्रमें) प्रकाशनमें बड़ी अनुविधा हो जाती है। अगर किसी व्यक्तिको पकड़कर आप उसे अपना योद्धा भी बना लें, तब भी काम नहीं चलनेका क्योंकि उसकी प्रदीपता उबालेवाली होगी। तब क्या किया जाए ?

क्या उसकी काट-छाँट कर छोटा कर दिया जाये वा उसका भीतर को बाहें को सुलियवाँ को समस्याएँ प्रकट हुई हैं उनके निवृत्ततात्मक विकासके लिए अबतक और खेव प्रदान किया जाये ? दूसरे पत्रमें क्या मेरी कविताके अन्तर्गतको (अन्तिमालिके लिए) विकासका अबतक दिया जाये ? मैं इसकी विकास और प्रसारका अबतक देनेके पक्षमें हूँ ! आज मैं महोत्त भरसे उस कविताक चक्करमें पड़ा हुआ हूँ। या या कहिए कि वह कविता हान नीकर मेरे पीछे पड़ी थी। बीच-बीचमें लोगोंके पत्र मान रहे - पिताजीके मित्रोंके कुछ अपरिचितोंके भी। लेकिन मैंने कुछ नहीं किया। जब लगा कि लोग बहुत बुरा मान जायेंगे मुझ गाली देंगे उनके मरे सम्बन्ध विपद जायेंगे तब मैं कलम को और उन्हें को धक्का दिया।

इससे वह कविता मेरा पिण्ड नहीं छोड़ रही थी। अगर वह कविता चापलेपपूर्ण होता तो एक बार उसकी आवेदात्मक अभिव्यक्ति हो जाने पर मेरी छुट्टी हो जाती। लेकिन बीमा हो सकना असम्भव है, क्योंकि भाषात्मक किसी बातको लेकर होता है, वह बात किसी दूसरी बातसे जुड़ी होती है। दूसरी बात किसी ठाँवकी बातसे।

इसमें तथ्यको मैं यों कहूँगा यथाथके तत्त्व परस्पर गुम्फित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्तिका विषय बनकर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है वह भी ऐसा ही गतिशील है और उसके तत्त्व भी परस्पर गुम्फित हैं। यही कारण है कि मैं छोटी कविताएँ लिख नहीं पाता और जो छोटी होती है वे बस्तुतः छोटी न होकर अमूर्त होती हैं। (मैं अपनी बात कह रहा हूँ)। और इस प्रकारकी न मालूम कितनी ही कविताएँ मैंने अमूर्त लिखकर छोड़ दी हैं। उन्हें खत्म करनेका काम मुझे नहीं आती यही मेरी दुःखेड़ी है।

इससे भी बड़ी दुःखेड़ी यह है कि लोग मुझ पर लिखनेको कहते हैं। एक बार मैं एक किताबकी रिव्यू की (वह भी ऊपरसे दबाव मानेपर) तो देखता रहा हूँ कि रिव्यूके लिए किताबोंपर किताबें आने लगीं। अब आप जो जानते ही हैं कि सचार्डिनर (सचार्ड यह जिसे आप यकीनन सचार्ड समझते हैं) कभी-न-किसी हद तक बन्दिश सगी ही रहता है। इसीलिए रिव्यू करना आगेसे रोक करना है।

मेरे कृपाशील अपिकारोगी ! (मैं मेरे प्रगाढ़ मित्र भी हूँ — लेकिन मेरा नामक आयशील व्यक्तिको जानूँ समझते हैं) — सैद्धांतिक कार्यके प्रति उनको अनास्था इस आशयाने निष्पन्न होती है कि मनुष्यको अपनी आर्थिक और भौतिक उपस्थितिके लिए ही काम करना चाहिए — इसलिए शान्त अगर चार दिशाओं निकलकर चारों हवाओंकी आसानी नहीं की तो क्या किया ! इसलिए मुझे सच्चाई ही मयी है कि मैं अन्याय लिखूँ और जाना रहित्वर विदाऊँ ।

मेरी स्त्री मेरी टेबलके पास जाकर खड़ी हो जाती है, और उदात्त होकर मुझसे कहती है कि तुम क्या कर रहे हो ? अच्छा कविता ? इसपर कितने रुपये मिलेंगे ?

अब मैं यह सोचता हूँ कि कम्म बसीटते हुए मेरे बाल लो सजेब हो ही बने । मेरे जीवनका यह अन्तिम कार्यकाल चल रहा है, तो मैं क्यों न अपनी कविताओंका संशोधन-परिचोधन करके उन्हें प्रकाशन-योग्य रूप दे दूँ ?

लेकिन यह कविता है कि हाथ-पाँव पसारती या रही है । और अब मुना है कि मुझे बल्की ही एक कुंभी किलनेका काम मिलेगा । मेरी भाविक कठिनाई कुछ तो हल हो ही चायेगी । इधर माता पिता भी आ रहे हैं । खकरी है कि मैं सामयिक कार्य हाथ में लूँ ।

कठिन बुरी बात लो यह है कि मुझे एक कामसे दूसरे कामपर जानेमें तकसीफ़ होते हैं । अब यह हास्य है कि मुझे सब कविताकी बार-बार पढ़नेकी उसम बार-बार संशोधन करनेकी इच्छा होती है । लेकिन अब समय नहीं है फिर कभी देखूँगा ।

लेकिन स्त्री मेरी टेबलके पास खड़ी हुई है । किसी जमानेमें जब वह छोटी थी (और मैं भी छोटा था) तो बड़ी आकण्ठ थी । आज वह मुझे भयावहानक प्रतीत होती है । उसकी देखकर मेरे हृदयमें बरना बापिल मास मर्बाबका मार्गक और भय — तरह-तरहकी भावनाएँ व्याप्त हो जाती है ।

कि इतनमें मेरी नजर लो बिट्टियोंपर जाती है जो मेरी टेबलपर पड़ी हुई है एक है धरद बोलीकी दूसरी बलमकुमारकी ।

दोनों मेरे अपने हैं । अब यही उनका दुर्भाग्य है क्योंकि अपनोंसे ऐंठना अपनोंकी उपेक्षा करना उन्हें मके पड़ी थीर समझना — आजके बहुत-से कलाकारोंका स्वभाव है । मैंने देखा है कि ऐसे कलाकार साधारणतः अपनेको बौद्धिक और प्रतिभाशाली और आधुनिक समझते हैं — धारद जैसे

होते भी हैं। दूसरे प्रकारके भी कलाकार होते हैं जिन्हें अपने लोग बड़े प्यारे होते हैं उनका यह तिसाब होता है कि अगर कोई कवि उनका दोस्त हुआ तो वह निम्नग्रेह डेबा और अच्छा कवि तो हो ही गया। किन्तु यदि कोई लेखक यदि किसी दूसरी या तीसरी प्रकारकी मण्डलीमें रहता है, या नहीं भी रहता है लेकिन उनसे जुड़ा है, तो यह भारणा बनानेकी प्रवृत्ति सबल हो जाती है कि वह यूँ ही लिखता है बका लिखता है टिड्डम लिखता है।

इस प्रकारकी मण्डलियोंमें जो चीज अच्छी है एक सीमित क्षेत्रमें बही खेद और वरणीय बिसापी देती है। उनके वे सब अपने हैं सगे हैं। इसलिए वे खेद भी हैं उत्तम भी हैं अच्छे भी हैं।

दूसरे वर्गोंमें एक विशेष प्रकारके लोग यदि अपनोंसे ऐंठकर उनको उपेक्षा करते हैं तो दूसरे विशेष प्रकारके लोग उन्हींमें रहकर उनमें प्रचलित स्तरोंको कसौटी समझकर, कीर्ति प्राप्त करनेकी कोशिश करते हैं। यह भी सम्भव है यह 'घरे-बाहिर'की समस्या हो यानी कि जो अल्पसंख्यक भारतीय हों उन्हें यूँ ही समझा जाय और जो परतमें और परकीय हों उन्हें अपने आदर्शों विश्वास और यद्वाका आस्था माना जाये।

मेरा खयाल है कि सब लोग ऐसे नहीं होते। उन्हींमें से आनेको भिन्नबाना चाहता है। लेकिन यह एकरम सब है कि अपनोंकी उपेक्षाका अपराधी हैं।

लेकिन मैं उन अपनोंसे बड़ा कहूँ कि यह कविता मेरा पिण्ड नहीं छोड़ती थी। यह नहीं कि मैं सबसे रात-दिन पिपका हुआ या (बसोंकि बीगा अलम्बर है) परन्तु यह कि जब भी मैं देखता कि मेरे हाथमें काम आ गया है तो पाता कि वह मेरी कविता है और कुछ नहीं। मैंने न मामूलुम जितने ही महीने और बाप उन-जैमौरर राब किया है। और उनसे मुझे कुछ नहीं मिला - न काम न मय न काम न मोठा।

कुछ पागत लोग कोमियापर (दिग्भिमिस्त) सीपिको छोना बनानेकी

प्रिक्रममें समाचार काम करते हुए गह हो पमे । कुछ दूसरे हंपके पागल
 जमीनमें मड़े छत्रानेको खोजने और कमी भी न पा सकनेमें इतने मद्यमूल
 रहे कि जलकी श्रैमिखीने समाजमें जमानेने उन्हें बेबकूड डरार दिया ।
 कई तरहके पापस हुआ करते हैं, और मुझे अब समझमें आने लगा है कि
 हो न हा में भी उसी श्रेणीमें गिने जानेके योग्य हूं । लेकिन नहीं मैं फिरसे
 समाचार बननकी कोशिश करूँगा और यद्य किर्तुंगा ।

मैंने इन और काम भी शुरू कर दिया है । लेकिन क्या बताऊँ कि
 एक चीज है, जिसका नाम है मुन जिसका नाम है ली । ये सब 'आधुनिक'
 नहीं है । फिर भी उनके बयंका अस्तित्व आज भी विद्यमान है । बहु
 मुझे कविताकी ओर ही से जाती है । लेकिन मैं कथन देता हूँ कि मैं
 कविता नहीं बल्कि यद्य किर्तुंगा । इससे मुझे आभरनी भी हो जायेगी
 और कुछ यद्य भी बड़ेगा ।

मैं सोचा है कि मैं हर कवितापर एक कहानी लिखूँ । क्या यह
 अयम्भव है ? साज्र बता हूँ कि मैंने बीसा कमी भी करके नहीं देखा है ।
 फिर भी सोचता हूँ कि बीसा कसें । क्यों ? अब क्या बताऊँ कि इस तरह
 मुझे यद्य लिखनेकी आरथ तो पड़ जायेगी । लेकिन उससे भी बड़ी बात
 यह होगी कि अगर कविता नहीं तो कविताकी आत्माको कहानीके रूपमें
 ही क्यों न सही माय्यता प्रदान करा सकूँगा । यह मेरी अभिधाया है ।

यह सही है कि मेरी कविता 'आधुनिकतावादी' है, पनचोर है ।
 लेकिन मैं आधुनिकतावादियोंमें भी पुराना हो रहा हूँ और अब अन्वी ही
 पुराई हो जाऊँगा । मेरे-जैसे बहुत-से पुराने नयोंसे बचनीय है उनके मारे
 अपने पुराने नुरतोंको छतारकर नया बुझफोट पारन कर रहे हैं । आभसे
 कोई पचोस-तीस साल पहले यह हाकल थी कि नया कदका भी मुँह-मुँह
 रतकर और हमारे हीर-सरीफेसे अपनेकी बुझुग-बीना अन्वीर बनाने रतना
 चाहता था । आज हाकल यह है कि बुझुग भी बाकक बनना चाहते हैं
 और अरत-अचलता मूचित करनेके लिए उसी तरहकी पोधाक भी आरन

करते हैं। इसका कारण था। पहले समाज और परिवारपर बुजुर्गोंका बख्त था आज नवयुवकों और बालकोंका ओर है। वो एक साल पहले में पू० पी० मया हुआ था। वहाँ जाकर देखना क्या है कि एक स्वनाम धर्म अत्याधुनिक महानुभाव बुखी है। पूछनेपर पता चला कि वे नयी पीढ़ीके कामामोसे पीड़ित हैं। जब मैंने उनकी कहानी सुनी तो मुझे भी पीड़ा हुई।

सचिन सरावत यह है कि अगर समाज और परिवारपर बुजुर्गोंका बख्त नहीं है, तो आज मुकत वे स्वयं बोपी हैं अपराधी हैं। स्वयं वे कहीं चूक पड़े इसलिए मान ला गये।

मैरा अपना विचार है कि जिस भ्रष्टाचार, अक्षरबादिता और अनाचारसँ आज हमारा समाज-व्यवस्था है उसका मूलपात्र बुजुर्गोंने किया। स्वाधीनता प्राप्तिके उपरान्त भारतमें दिल्लीसे लेकर प्रान्तीय राजधानियों तक भ्रष्टाचार और अक्षरबादिताके जो दुष्प्र निकायी दिवे उनमें बुजुर्गोंका बहुत बड़ा हाथ है। अगर हमारे बुजुर्गोंपर नये तस्फोपी भ्रष्टा नहीं रही तो इसका कारण यह नहीं है कि वे अनास्थावारी हैं बल्कि यह कि हमारे बुजुर्ग अनास्था नहीं रहे। और अगर हमारे मुक्त अनास्थावारी हैं तो भी कोई बुराई नहीं है क्योंकि अनास्थाका जन्म आस्था ही सँ होता है। अनास्था आस्थाकी पुत्री है। अर्थ यह है कि आजके पहले बच्चोंके सामन रंग-भंगपर आस्था नाटक खेला करती थी और अनास्था नवयुवमें मूल संभामन करती थी तो आजकल रंग-भंगपर अनास्था नाटक करती है और आस्था नवयुवमें बैठकर बुराचार मूल-संभामन करती है। यह ही मामलके लिए सीवार नहीं है कि आजकल नवयुवकोंमें केवल पुँजा ही रज् गया है और आप नहीं है। आप है और वह भीतर-ही-भीतर है। सचिन नवयुवक पाना है कि आज उस आनकी कोई कीमत नहीं रह गयी है। इस अनाचारिक जगतमें जिने कभी एलडीसे समाज भी कहा जाता है उस आन को पुराना भार जैसा-मुँछ माना जा रहा है। वह आप उसकी निज

की है, लेकिन उसके कारण सामाजिक है - अविद्यार। लेकिन अगर ऊपर कहीं हुई बात सच है तो सवाब यह है कि उसके काममें यह बात सत्प्रती क्यों नहीं? प्रश्न स्वाभाविक है।

इसका उत्तर इस प्रकारसे दिया जा सकता है। बुद्धुर्पेति सत्ताधि कारियेति, समाज-संवाक्येति आर्थिक शक्तिसे सम्पन्न वर्गोति, समाजके प्रत्येक स्तरपर प्रकट और अप्रकट सूक्ष्म और स्पृक्ष भ्रष्टाचारका विधान कर रहा है। इस भ्रष्टाचारके कई रूप हैं। कभी यह कानूनके रूपमें भी प्रकट होता है, कभी कानूनकी आड़में गैर-कानूनी रूपमें। कानून या नियम तो आर्थिक शक्तिसे सम्पन्न प्रमादशाही लोगोंकी बुबिधाके लिए हैं।

तो इस प्रकारके वातावरणमें छिट होनेके लिए हमारी सम्प्रदायीका यह उदाहरण होता है कि किसी-न-किसी तरह रीतानस समझौता करके एकेको भी ब्रका कहो। बड़े-बड़े आरतबारी आज राजनके यहाँ पानी भरते हैं, और हमें हाँ मिलते हैं। बड़े प्रवृत्तिल महानुभाव भी इसी मन्त्रमें निरुत्तार हैं। जो व्यक्ति राजनके यहाँ पानी भरनेसे इनकार करता है उसके बच्चे मारे-मारे फिरते हैं। और आप जानते हैं कि क्याति प्राप्त यतोदीप्य प्रवृत्तिल महानुभाव भी (मैं सबकी नहीं यह सक्ता) उनपर हंस पड़ते हैं या कभी-कभी तुच्छके प्रति दवाके भावसे परिष्कृत हो उठते हैं। तो संशेगमें जो व्यक्ति पटे हास और फटीपर है, उसे माम्यता देनेके लिए कोई ठीवार नहीं चाहै यह किठना ही नैतिक क्यों न हो।

तो ऐसी दयनीय शनिद्वयी दयान बचनके लिए अमर हमारे नवयुवक चतुरठाका प्रयोग करें तो इनमें आरतव नहीं होना चाहिए। वे भी राजनके किमी शसके अनुशासके उपदानसे अपना रिखा दायम करनैदं कये हुए हैं। और राजनके राम्यका एक मूक नियम यह है कि जो अपना अनुभूत वास्तव है उसपर परदा डालो। इसलिये हमारे बहुत-से कवि

और कमाकार, मारे डरके उस वास्तवको नहीं मिलते हैं जिसे वे भोग रहे हैं क्योंकि वे उस वास्तवको इतना अधिक जानते हैं कि अति-परिष्कृत कारण भी उस वास्तवसे बढ़ जाना और उड़ते रहना चाहते हैं। अनुभूत वास्तवका मात्र जितना अनारर है उतना पहले कभी नहीं था।

यह नहीं कि आजका कथा साहित्य यथापवादी है जबवा यथाप-विरोधी है, बल्कि यह है कि सेवक यथापक गामपर, अनुभूत यथाप (अपने जीवनके वास्तविक यथाप) से दूर निकलकर किसी औरके यथापसे कहानियाँ और उपन्यास गढ़ना चाहता है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि हमारे सेसकके पास प्रतिभा नहीं है बल्कि यह कहना चाहता हूँ कि उसमें मानवीय अन्तरात्मा — मानवीय विवेक-चेतना — की हलचल मजानबाली पीड़ा नहीं है क्योंकि वह पकड़तेसे पयादा समझदार हो गया है, और समझदारीका यह उदाहरण है कि जिस दुनियामें हम रहते हैं उससे हम समझौता करें।

आजके साहित्यकारका आयुष्य-कम क्या है? विद्याभन डिपो और इसी बाब साहित्यिक प्रयास विबाह पर साअसेट परिट्रोडिटिक लिबिम महानेमि व्यक्तिगत समक श्रेष्ठ प्रकाशकों-हाउ अपनी पुस्तकोंका प्रकाशन सरकारी पुरस्कार, अथवा ऐसी ही कोई विद्येप उपलब्धि; और जामीसबे कपके आस-पास अमरीका या रूस जानेकी तपारी किमो व्यक्ति या रसिदाकी महान्तासे अपनी कृतिपाजा अंशकी या कसामें अनुबाह किसी बड़े मारी सैटक यहाँ या सरकारके यहाँ ऊबे डिस्मकी मोकरी।

अब मुझे बताने कि यह बग बना तो यथापवाद प्रस्तुत करेगा और क्या आरपवाद? स्वामी विवेकानन्द आजसे कोई छौ बरस पहले यह घोषित कर चुके थे कि भारतके उच्चतर बम भतिक कपसे मृतक हो गये हैं। वे करते हैं "भारतकी एकमात्र आशा उसकी जनता है। उच्चतर बग दैहिक और नैतिक कपसे मृतक हो गये हैं।"

अगर उच्चतर वर्गोंने यह ज्ञात उस समय था ता आज हम सिद्ध

यह कहेंगे कि इस समय भारतक उत्कृष्टतम वय वैदिक रूपसे दूर प्रवस हो
 यमे है और बहोतक नैतिकताका प्रवस है वह न पहले कभी भी न आज है।
 नैतिकताक स्थानपर आज सिद्ध सौदेबाजी और अवसरवादिता है। स्वामी
 विवेकानन्दन एक बार यह भी कहा था मैं एक समाजवादी हूँ इसलिये
 नहीं कि वह एक सवपुत्र-सम्पन्न-सम्पूज्य व्यक्त्वा है बल्कि इसलिये कि
 रोटीके अभावकी अपेक्षा माषी पटी बेहतर होती है। अन्न व्यवस्थाओंकी
 परीक्षा की जा चुकी और उनमें अभाव ही अभाव पामे गय। अब इस
 (व्यवस्था) की भी परीक्षा कर ली जाय - अगर और किसी बातसे लिये
 नहीं ता केवल लचीनताक लिये ही क्यों न सही। ध्यानमें रक्षिये ये बातें
 जो स्वामी विवेकानन्दने कही कसी राज्य व्यवस्थिके पहले कही यमां है।

मन स्वामी विवेकानन्दका नाम क्यों किया। इसलिये कि अब मैं
 बुद्ध होन जा रहा हूँ और पीछेकी ओर देखनेका अस्वात् कर रहा हूँ।
 लेकिन यह भी मैं बता देना चाहता हूँ कि आजका उत्कृष्टतम वर्ग अधिक जड़
 और अविधिक प्रतिवामी हो गया है। वह इस समय साहित्यम ऐसे विचारोंका प्रचार
 करना चाहता है जिनक द्वारा हमारा साहित्यिक व्यक्ति अनुभूत वास्तवोंकी
 पाठविकृता और मानवीमतापर परदा डाल दे और वह मनताकी और
 सम्भूत न हा। जनताक विरोधका एक उदाहरण लोडिये। हमारी नयी
 नवितामें बहुत बार, ऐसे भाव-विचार प्रकट किये जाते है जो नितागत
 प्रतिक्रियाकारी है। 'नयी नवितता की 'ग्राम'वा सवाल नहीं है' सवाल है
 उन बुद्धिबोंका जो मेरे प्रयासके विरुद्ध उलठ है उलठ ही नहीं बल्कि
 प्रतिक्रियाकारी है।

आजके मुखककी बाह्य स्थिति और अन्त-स्थितिका बन्दन करते हुए
 एक कवि कहता है कि अगर बाह्य रूपमें काम करना पड़ा तो सामुदाय
 मुझे 'भीड़' बन जाना पड़ेया मैं 'जुलूस में शामिल हो जाऊँगा' लेकिन
 'भीड़ और 'जुलूस तो मनुष्यके व्यक्तित्वके बहिष्कारका अन्तर्म्पितत्वके
 उद्धारका मुखक है इसलिये मेरे मुखक कही भी नहीं है।

एक पुराना प्रयोगवादी कवि भी 'भीड़' से बचता है। भीड़ के प्रति भयानक प्रतिक्रिया करते हुए वह उससे दूर दटना चाहता है, 'भीड़' के प्रति घृणा व्यक्त करता है।

निस्सन्देह वे दोनों कवि अपनी तरह से अपनी बात कहते हैं। मेरी तरह से नहीं। किन्तु अगर मैंने उनकी पृष्ठिके सम्बन्धमें लिखा है, कि उनकी विविध वैचित्र्यपूर्ण विविध भावों के सम्बन्धमें।

कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह जानता है कि एक स्थानमें एकत्र भसपट्टि बनना भीड़ नहीं है, क्योंकि वह संघटित है। जहाँ संघटन है वहाँ एक प्रेरणा और एक उद्देश्य भी है। वहाँ एक प्रेरणा और उद्देश्य है वहाँ एक स्वीकृत और सक्रिय चेतना है। देश-विदेश के पिछले इतिहाससे हमें यह सूचित होता है कि संघटित जनता ने असाधारण काम किया है।

है यह सही है कि इस संघटित जनता की प्रेरणा और उद्देश्य को देखकर ही यह निश्चित करना होगा कि यदि वह प्रेरणा और उद्देश्य उचित है तो वह संघटित एकत्रीकरण भी सवधा उचित है। और यदि वह प्रेरणा और उद्देश्य गलत है तो वह संघटित एकत्रीकरण भी अनुचित है।

किन्तु हमारे कई नये कवियोंको उस एकत्रीकरणसे ही डर लगता है, जिसे जनताका सामूहिक दुःख कह सकते हैं। उसे सामूहिकतास विड है। क्यों ?

इसलिए कि पश्चिमी विचार-मन उस बीसा ही मिलाते हैं। उसे सिखाया गया है कि सबसे आरम्भ-निर्णीत विचार परक संदर्भमें दुःख होकर व्यक्ति जनताको समूहमें विहीन कर देता है। इसलिए ही आमक सचत महानुभाव तुम अपनेको समूहमें विहीन मत करो।

दुःखी राशामें जनता समूह है—वह अन्न है, आश्रय-प्रस्त है वह जल्दी ही भीड़ बन जाती है। उसका साथ मत दो। तुम सबसे व्यक्तिगत धाना प्राप्त-नेत्र हो। उसमें अपने आरको विहीन मत करो।

अने अतिम निष्कर्षमें यह विचारधारा अत्यन्त प्रतिक्रियावादी है,

यह जनके प्रति नृणापर आधारित है, और बुद्धिजीवियोंकी जनतासे मतभेद करके रखनका एक उपाय है।

यह विचारपाठ अत्यन्त भारतमें नहीं थी। यह इस समय उपस्थित है। सब नये कवि जनताको घृणा नहीं करते हैं। लेकिन कुछ ऐसे हैं जो इस प्रतिक्रियाकारी विचारधाराको अपनाते हैं। यह विचारधारा नयी है।

हमारे विस्वविद्यालयोंके कुछ केन्द्र ज्ञानप्रसूत साम्राज्यवादी देशोंकी विचारधाराओंको हिन्दीमें प्रचलित करते हैं। प्रचारके कई तरीके हैं। जैसे मौखिक परिसंवाद लेखन प्रकाशन इत्यादि।

भारतके उत्कृष्टतर वर्गोंके बहुतेरे कथनार ठेठ पश्चिमी साम्राज्यवादी विचारधाराओंको अपनाकर उनका प्रचार करते हैं। उन विचारधाराओं और बुद्धि-विद्वानोंका प्रचार साहित्यमें भी होता है। उक्त यह है कि यह विचारधारा अधिक मूर्ख अधिक मुक्ति-मुक्त होकर, अधिभय और उग्रताका नामा पहनते हुए साहित्यमें उपस्थित होती है। ऐसी विचारधाराएँ जन-मन और जन-नृणापर आधारित हैं। भारतके उत्कृष्टतर वर्ग पश्चिमके साम्राज्यवादी देशोंकी अत्यन्त राजनीतिक और सांस्कृतिक मनोवृत्तियोंको आत्मसाधु करते हुए अपने सांस्कृतिक प्रभावकी विस्तृत करमा चाहते हैं। छोटे या मझासे मध्य-वर्गक मूल्यवादीसे लेखक पर और प्रतिष्ठानके कोममें उन्नीके दरवाजे बाते हैं। उन्नीसे सामंजस्य स्थापित करते हैं और जाने या अनजान साहित्यमें उन्नी उत्कृष्टतर वर्गोंकी अत्यन्त राजनीतिक सांस्कृतिक मनोवृत्तियोंके उन्नीके प्रभावों और विचारोंके उन्नीकी बुद्धियों और भावोंके संवाहक बन जाते हैं। यह एक वास्तविक जीवन-तथ्य है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता। यहाँतक कि उनके दरवाजे जाकर उनकी कृपासे उन्नी जीवनकी मुम्बर राज-सम्पदा प्राप्त करके उन अपनेसे घृणा और विरस्कार करते समते हैं कि जिनमें वे जनम थे। उन अपनेके जीवनकी बहरेंब मूरत जनमें उनक विरुद्ध एक उग्रपंथी हुई प्रतिक्रिया पैदा कर देती है। उन अपनेसे हटकर, वे अपने स्वामियों या उच्च सत्ताधिकारियों या

सामंदायक प्रभाव उत्पन्न व्यक्तियोंकी सुसामर करनेमें एक दूसरेकी होड़ करने लगते हैं। और इस होड़के दौरान एक व्यक्ति या सत्ताक आसपास घुट या दस बन जाते हैं। पारिविक संकट उत्पन्न हो जाता है। साहित्यिक दक्षमें यह पारिविक संकट एक प्रकारस व्यक्त होता है। आर्थिक दक्षमें यह पारिविक संकट दूसरे प्रकारस व्यक्त होता है। राजनीतिक दक्षमें यह पारिविक संकट किसी तीसरे प्रकारस व्यक्त होता है। मूल बात यह है कि यह संकट साम-सामके फलस्वरूप और उस साम-सोमसे प्रेरित 'समसदारी'से पैदा होता है। जबतक समाजपर घनका घासन रहेगा तब तक यह पारिविक संकट अविचरो अविच मगसोप और अग्रवस्था उत्पन्न करनेके अतिरिक्त मानव-सुखाको हानिके साथ ही साम-सोमसे प्ररित समसदारीका प्रघानता दशा आयमा आरभी पयागम पयाका दुष्प्रा और ओछा होता बछा आयमा। फलतः न बरस सामाग्य जनतापर जनक दासों-उपदासों-डास घोपपका बास बढ़ता जायेगा बरन् यह कि उन स्वामियों और दासों तथा उपदासोंके पारिविक अघ-पठनस उत्पन्न परिस्थिति भी सामाग्य जनताके सिं अविनायिक भयाबह और दुबह होती जायेगी। ऐसे भयानक दूरवोंका विस्तार भारतमें आज भी कम नहीं है।

तो मने यह सब क्यों लिखा? इससिं कि आज निपनका इस परिस्थितिमें जीवन-व्यसन करना पड़ रहा है। और पारिविक अघ-पठन के मानसिक सजटों और आन्तरिक म्मानियोंका अनुभव करना पड़ रहा है। इस परिस्थितिसे आज इस सिबन्तिको भी मिसाकर देखिय कि हिन्दी क्षेत्रमें ओई व्यापक मंजीवनकारी आन्दोलन या हम्बल नहीं है जो सम्म बत अग्य भाषा भाषी प्राणोंमें है।

ऐसी स्थितिमें तो जब कि बाह्य-समाजमें नजीवनकारी उत्प्रेरक आन्दोलन या एमो संगठित शक्ति नहीं है एक संवेगज्जोल मन जिसमें अचरक अचरकारो कींजल और साम-सामता नमसदारी विकसित नहीं

हुं है केवल अपनेको निःसहान अनुभव करता है। यदि वह कवि हुआ तो सहज मानवीय आकांक्षामौखी पृथिके सामाजिक वातावरणके अभावमें उसका काव्यात्मक रूप अविश्व व्यापक अविश्व बोधित और अविश्व व्याप्य-प्रस्त हो जाते हैं।

हो तो मैंने अपनी एक कवितामें उन्ही कावकी रीतिका प्रयोग किया है। अन्तर केवल यह है कि इस व्यापकताके काव्य-कारण सम्बन्ध भी वही प्रस्तुत किया गया है। अब कविता कोई निःसह तो है नहीं कि जिससे सीपोंको आसक हानासकी आगकारी मिले न वह कोई नाटक है जिसमें पात्र प्रस्तुत होकर मृत कल्पित जीवन-मयाम अस्तित्व करते हैं। कविता एक संघोतको छाड़ अन्य सब कलाओंसे अविश्व अमृत है। वही जीवन मयाव केवल काव्य बनकर प्रस्तुत होता है, या विन्म बनकर या विचार बनकर। कविताके भीतरकी सारी नाटकीयता वस्तुतः भावोंकी प्रतिमयता है। उसी प्रकार कविताके भीतरका कथा-तत्व भी भावना इतिहास है।

ता छिर ऐसी स्थितिमें यह असम्भव नहीं है कि कविताको अनेक अस्मद मय विषयोंमें प्रस्तुत किया जाये। अपवा अनक अस्मद मय-विषय कुछ इस तरह आलोचित और दीप्तिमान हो उठें कि अन्त बन जायें गनिमान हो जायें और एक विषय विद्याकी ओर प्रवर्तित हो सकें।

पता नहीं क्यों और कैसे मैंने एक काव्य-कथा लिख दी। निःसहमेह उसमें कथाका केवल आयास है, नाटकीयताकी कबल मरोचिका है। वह विन्म आत्मगत काव्य है और उस काव्यकरेण सोचते हैं विन्म सोचते। मय आसक अविश्व ज्ञानाना कुतूहल और समाधान बहराहट और दुःखिता उसमें सतक रठगी है। वह असकमें एक एतर्गेण है - एक कनक है।

बहु कनक क्या है ?

एक व्यक्ति है, उस समय है कि वह एक ऐस अज्ञानमें चला आया वही पट्टचना प्रतिबन्धित है। उस अज्ञानके भीतर एक बंदला है - पुराणा-

बुराता। बंगला रहस्यमय है। वह मूला है। वहाँ उसे एक आदमी मिलता है जो गुप्तचर प्रतीत होता है। एक दूसरा आदमी मिलता है या विस्फुलक पागल है। कविताके अन्तमें बताया जाता है कि हम बंगालेकी पीढ़ियाँ जमीनके भीतर-भीतर खडती हैं व कई देशोंमें जा निकली हैं व सड़करके बसाँकटावरमें भी चुपचाप पड़ोश गयी हैं और मानव-मस्तरके भीतरके सर्वोच्च स्थापनपर भी। इस बंगालेसे सबसे अपना-अपना सामञ्जस्य स्थापित कर लिया है। इसी सामञ्जस्य-स्थापनाके फलस्वरूप सब लोग अन्धरेसे दूर गये हैं जनके दिलकी कई फाँकें हा मयी है। इसी कारणसे प्रतीत होता है कि यहाँ एक बानर-रता है। अर्थात् एक नकारवाद है। संशयमें वह बंगला काम-लोभकी अर्धव्यारिणी सत्ताका प्रतीक है जिससे सामञ्जस्य और सन्तुलन स्थापित करके लोगोंने अपने आपकी झुठका दिया है। बंगालेके भीतर आत्माकी हत्या हो चुकी है। और इस हत्याकाण्डसब सब लोग परिचित होते हुए भी चुप हैं क्योंकि वे उस बंगालेकी सत्तासे सामञ्जस्य स्थापित क्रिये हुए हैं।

बचमें यह रूपके एक सिमसिलेसे सामने आता है, लेकिन कवितामें यह सिमसिलता दूट जाता है उसी तरह जैसे स्वप्नके भीतर स्वप्न आते हैं - उलट-मुलट हाकर। कवितामें मने उस उलट-मुलटपनका निर्बाह करनेका प्रयत्न किया है।

सोचता हूँ कि अपनी इस प्रथम कविताकी किसी कहानीका रूप दे दूँ। सम्भव है कहानीकी कोई मासिक पत्रिका मुझे कमसे कम पत्रक भीत दामे दे दे। इससे मैं अपने मित्रोंके सामने यह सिद्ध कर सकूँगा कि मैं अयोग्य नहीं हूँ और रुपये कमा सकता हूँ। कुंजी लिखनेका नाम मैं बार चिनठे बार करूँगा। क्यों छीक है न ?

ढकुरेपर सूरजका बिम्ब

बह उससे गै सड़कर मिला मुझे लगा कि वह ठीक बात करनेके मूढ़में नहीं है। राहमें मुझे देखकर वह लुप नहीं हुआ था। उसकी घटकी पोठ पसीनसे तर-बतर नी बाक भरत-भरत थे। और बेहुरा ऐसा मलिन और बछासत था मानो सौ जूते टाकर सचारी जा रही हो। तत्काल निमय लिया कि वह सरकारी बस्तरसे छोट रहा है, कि वह पैरस मा रहा है, कि वह बही बहसकारको किसी डेबी या बोबी साहित्यिक या राज नैतिक धेमीका ही एक हिस्ता है कि वह मुझे प्रस्ट बनास भूट-भूटमें देख सिद्ध थाये बड़ जाना चाहता है क्योंकि वह बतकमें कड़ा होकर, कॅन्स्ट कड़ा नहीं करना चाहता।

पुराने पमानेमें मूले अ्यक्तिका अम देनसे अितना पुण्य अ्यता वा आपुनिक बालमें आसद उससे भी अधिक पुण्य अमसे मलिन और बके हुए अ्यक्तिका एक कप गरम-गरम चाय प्रदान करत हुए हो नीठी बातें करनेसे सब जाना चाहिए। मेरे इस तकका आचार यह है कि आदरस सक्ता अम अिमसे बेहुरा मूढ़ जाठा है पसीना जाठा है कपड़ोंकी इतिरी बियड़ जाती है अँठे हुए मास अस्त-भ्यस्त हो जाते हैं, रॅनलियोंको स्याही लप जाती है, धाँगे कमजोर हो जातो है अजनेसे बड़े पदाधिकारियोंके मारे दिक पद-अक करता है। मठअब यह कि कम-से-बन मानवाचित मुबिवात्रोंमें अधिक-से-अधिक अमकी अनुप्य-मूर्ति - दुनियाको तो छोड़ ही दीशिम - अपन भाइयोंकी, उनकी अँसोंमें भी हजार सद्दानुमूर्तियोंके बाबजूद मूरम और स्पून अनाहरकी पात्र है अमम्मानकी पात्र है। दूबरी

तो यह है कि ऐसी मनुष्य-मूर्ति अपने स्वयंको भाँखोंम भी बनाकर और असम्मानकी ही पात्र होती है। इस विश्व-व्यापी और अन्तर्यामी बनाकर और असम्मानकी बूल चारण कर, हृदयमें बासी कड़ुआ जहर क्रिये हुए बके कष्टान्त और अमित व्यक्ति जब अपने दण्डरोंसे बाहर दो मील दूर अपने परकी तरफ़ सुड़कते-मुड़कते निकलते हैं तो उनके मनम और हमारे मनमें समझाकितना महान् आध्यात्मिक मूख्य अक्षररित होता है, वह अचानातीत है!

इस तिराहेपर लड़े हाकर मुझ उस व्यक्तिकी चरकरत महसूस हुई। वह मेरा परिचित था। आखिर जब मैं इस कानमें अकेला खड़ा हूँ तो वह मुझसे बातचीत तो कर ही सकता था। मुझे समता था कि जबतक मैं अपनी बकबास पूरी नहीं कर लूँगा मुझे बँन न मिलेगी।

मैं पान पखा र्छा था। सुखरू था। ऐसे मौकपर मनुष्य स्वभावतः बुद्धिमान हो जाता है। उसमें आत्म विश्वासकी तेजस्विता र्छती है — वह एष-स्वामी ही क्यों न हो। वह आघावासी होता है। वह मसीहव दि सकता है। वह दूर-दूरा होता है। बाह तो पैगम्बर हो सकता है। बाहे तो वह रोमीचिह्न प्रेमी बन सकता है। बाह-बाह! सुखरूपन तेरा क्या कहना। बिना यमके जो प्राप्ति होती है, अरामन्त्रि हाती है बहो तू है।

पल-भर मैं संकोचकी गटर-संघामें डूब गया। मैं रीजकी (सबमुज) फल बलास कपड़े पहने था। बेहतरिग मूट। मैं गया था चहरके ठँपे बर्जे के कुछ लोपोंसे निकलने। बर्जा या तो मर्हेगी किस्मकी खारीक कपड़े बलते थे या मैं कपड़े। आत्ररुत मैं आपा बैकार हूँ। अपने ही बग्में चरणार्थी हूँ। सिझाबा कुछ 'बड़ आन्मियोंके मही जाकर, एक अस्तित्पेट शपरेबन्ग के पर (वह जगह अभी छासी नहीं हुई थी लेकिन मुना था कि होनेबाकी थी) क लिए पाबिस कर र्छा था।

और पर्वांशी आप ऐम कपड़े पहन छेते हैं अपने धुसे-धुठानयो एवास्पकी संवदना मानते हुए (घोड़ी बैरके लिए ही क्यों न सही) अपने को 'बावना अनुभव करते हैं! गौरव और गरिमाकी यह संवेदना !! तेरा

नाम सत्य है, तेरा नाम मिथ है, तेरा नाम है सोम्य ।

लेकिन सड़कके उस छँपनेबल मुहल्लेके अपने भारतीयोसे छीटकर मुझे आकस्मिक यह भावना हुई कि मैं अकेला हूँ कि अपनी असली सोपोंके साथीके साथ बैठकर ही मैं अपने आनन्दका विवरण और उपभोग कर सकूँगा । और इसी अन्त-प्रकृतिके अन्तर्गामी चक्केके फलस्वरूप मैं आँफिससे सीन्ते हुए उस व्यक्तिके आमन्त्रण से बैठा ।

लेकिन यथोही मैं उसके साथ चाय पीने लया हम दोनोंके बीच एक उद्दरीकी चुन्नीकी रेखा दूरीका माप-बन्ध बननेकी कोशिश करने लगी । मैंने सदायताकी पराकाष्ठा करते हुए उसके लिए एक नया चाय और पैगवा की ।

मैं अपने शरीरपर पड़े हुए कपड़ोंसे लयाठार सचेत था । ये बदन ही है कि वो मुझे उससे दूर ठेके या रखे । इस संकोचकी दूर हटानेके लिए मैंने कोश उतारकर रख दिया । गरमीके बहाने घटके बदन इस प्रकार खोस दिये कि अन्तर घुलनी पहनी हुई जीन-शीर्ष फटी बनिवान कोर्गोंको दिखाई दे सके ।

मैं चाहता था कि वह मेरे अन्तर्गामी लक्ष्यको देखे । लेकिन हायव वह अपनी चुनके चुँबलकेमें उड़ते हुए चक्के-हारै पंछीकी भाँति नीड़में समाता चाहता था । पर कोटना चाहता था ।

मैं मानेकी उससे एक मज्जु अन्तर्गामी न करके और सचची महलठ वा सा । न लेख सकनेके कारण उससे एक मज्जु गीता भी न अनुभव करके इसलिए उसका भी सुच करके उसके साथ हँस-बोल केनके लिए मैंने उससे पूछा 'कल काल इण्डिया रेडियोसे मैंने आपकी कहानी सुनी । बहुत अच्छी थी । पढ़ी भी अच्छी लगी !'

उसने मेरी सरल ब्याजमे देखा — यह जाननेके लिए कि मेरा इयवा क्या हो सक्ता है ।

सचने प्रमुताचय कहा 'अजी आप तो बस'—'आप तो आलोचक

है, मुझ बताइये ! मैंने विस्वास दिखाया कि उसकी कहानी बहुत अच्छी थी, क्योंकि वह सबकुछ बहुत अच्छी थी । लेकिन उसका जो नहीं मरा ।

उसने मेरी तरफ़ घौरसे देखा । वह एक पतला-रुम्बा चेहरा था । पंकरजसे रपादा डँबा माथा—शायद आगेके बाल कम होनेके कारण ! मुझे ऐसे चेहरे पसन्द हैं । ऐसे लोगोंमें आप डूब सकते हैं और आपकी दुबकीको वे एम्बाय करने (मन्ना लीने) की ताकत रखते हैं । कम-से-कम मेरा ऐसा सवाल है । मेरे-श्राव की मयी प्रसंसाके प्रति उसकी सन्देहकी दृष्टि मुझे बहुत-बहुत मायो । एक सच्चा ऐलक जानता है कि वह कहीं कमबोर है कि उसमें कहीं सचासि भी चुपचा है कि उसने कहीं लीपा पोती कर डाली है कि उसमें कहीं उलझा-बड़ा दिया है कि उसे बस्तुत कहना क्या था और कह क्या गया है, कि उसकी अभिव्यक्ति कहीं ठोक महीं है । वह उसे बखूबी जानता है । क्योंकि वह ऐलक सचेत है । सच्चा केन्द्र अपने सुरवा दुस्मन होता है । वह अपनी आत्म-शान्तिको भंग करके ही ऐलक बना रह सकता है ! इसलिए ऐलक अपनी कसौटीपर दूसरोंकी प्रसंसाको भी कसता है और आलोचनाको भी । वह अपने सुरवा सबसे बड़ा आलोचक होता है ।

बेचाप सबसे पंजर-स्तार आलोचक यह सब करा जाने ! वह केरस बाह्य प्रभावकी दृष्टिमें देखता है । आलोचक साहित्यका शरीण है ! माना कि आगेयारन बहुत बड़ा वर्तम्य है—साहित्य संस्कृति समाज विरल तथा बह्लाणके प्रति । लेकिन मुश्किल यह है कि वह शिठना डँबा उत्तरदायिन् विरपर से सेठा है अपनेको उतना ही महान् अनुभव करता है । और सच्चा ऐलक शिठनी बड़ी जिम्मेवारी अपने विरपर से सेठा है स्वयंको पतना अपिक तुच्छ अनुभव करता है । उसे अपनी अतामता और आत्म-शीमाका सागात् बोध होता रहता है । दसा क्यों ? इसलिए कि वह आत्मी अभिव्यक्तिकी तुम्ना जीमें पड़कनवाले देखल बस्तु-मग्यसे ही नहीं करता बरन् अपने स्वयंके साघात्कार-सामय्यकी तुम्ना उस बस्तु-सायकी

विद्यालयासे करता है। आत्म-सत्य भी कह सकते हैं उसे जिसकी आरम्भ के लिए उसे लगता है कि जिसकी आवश्यक मनःशक्ति उसमें चाहिए उत्तरी नहीं है। कभी-कभी तो उसे केवल आभास-संबंधनसे ही काम चलाने पड़ता है। जब अपनी विषय-वस्तुकी विद्यालया और महाराष्ट्री तुलनामें केवल अपनेकी हीन नहीं न अनुभव करे, जबकि वह पूरा जानता है कि उसने जो कुछ वस्तुतः सम्पन्न किया है उससे भी अच्छा किया जा सकता था। विषय-वस्तुके प्रति विश्वरूपा यह संवेदनात्मक उत्तरदायित्व उत्तरी मन चक्रिककी किछ तरह भंग किये रखा है, यह किसी सच्चे स्पष्टक ही जाना जा सकता है।

मैंने उस दुबक-गठके बोहरेके सन्देह भावको देखा और बात पकटनेकी बुद्धिसे कहा 'मह पाकर है कि आपकी कहाणी बहुत पचादा मनी वैज्ञानिक नी।

उसने मुझकराकर बजाब दिया 'मनोवैज्ञानिक न होती तो क्या होती। मनमें ही पुस्तके और बुद्धि रक्तके सिवा और क्या है जिनकीमें ?'

मैंने उससे असहमति प्रकट करना चाही। मैंने पूछा, 'तो क्या आप कुच्छकी मनोवैज्ञानिकताकी जतनी मानते हैं।

कुच्छ-कुच्छ मैं नहीं समझता उनसे बजाब दिया, 'हर जमानेमें फीर्षीकी बुद्धिकर रही है हर जमानेमें एक श्रेणीका दिल नहीं तुला है - बहुत गिणक श्रेणीका भारतीय जनताका मेहनतकशका' वह आगे बढ़वा गया पिठना कौन-सा पेसा मुय था जिसमें कुच्छ न रही हो। और फिर- और फिर- कुच्छका मतलब क्या है ?' उसमें मझ समझाते हुए कहा 'कुच्छका मापितत्य तो सब समझना चाहिए जब कुच्छके बुद्धिवादी भारतीयका दूर करनेकी वैद्यकी और विज्ञान न ही। ह कुच्छका अगर अयदिपन साइकोऐनेलिटिक मतलब किया जाये तो वैज्ञानिकीवनके कच्छावरीयसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। कुच्छ अन्य साइकल और मानसशास्त्री संकर समझ है।

बहु बुबला-गठला बेहूरा मेरे सामने उठाबदार और उभारदार हो गया उसमें मग्न गरिमा प्रतिबिम्बित हो उठी । मुझे लगा—उसका विमाप घुद-ब-घुद सीखता है । उस व्यक्तिमें मेरी शिथिलता उपास बड़ गयी । मैं उसके बिचारोंको आदर-पूर्वक सुनने लगा ।

उसने मुझे बोलनेका अवसर न देते हुए कहा मैं तो सिर्फ मेहनत पर अकारण मेहनतपर उम मेहनतपर जो अपना पेट भी नहीं भर सकती उम मेहनतपर जो बहुत सज्जन है उस सहन-शील धमपर लिप्तने-बाला है उम धमका बिभष करना चाहता है जिसका बदला कभी नहीं मिलना और जिसे आये-दिन आत्मबलिदान और त्यागकी लसीहत दी जाती है । मैं उस भवानक मदीनका बिभष करनेवाली कहानी नहीं, बरिफ उपायाम लिखनेवाला है जिसमें हर आवमी बहु नहीं है जो बहु बस्तुन है या हाता चाहेगा । उसमें मशीनका शेष नहीं । मदीन बलाने बालोंका गुग्गर अघराय है । इस मदीनकी लीह-नदियामें पड़े हुए मानवी धरवा मैं बिभष करना चाहता है । कहिए आपका क्या उपाय है ?

मैंन हार् मिनिट ठर जैसे घाँस ही नहीं ली । उसने माव-बिचारन न केवल मुझे प्रभावित किया था बरन् दिमापपर दबाव डाल दिया था । मेरे सिरपर बदन ही गया था ।

मैंने बोरे-बोरे कहा 'अरु बिभष कीजिए, अरु लिखिए ।

क्यों लबिन आप चुन हो गये ।

मैंन कहा 'चुन नहीं, मैं सीख रहा था कि सिर्फ बहुत बड़ी चीम (रिषय) उद्य केंनेते काम नहीं चलता । यह अरुकी है कि सिर्फ उतना ही अंध उटाया जाये जिसका मनपर अत्यधिक आघात हुआ हो । बड़ी मारी बिगिधप राही करनरी बजाय छोटी-सी बुटिया छोड़ी की जाये ली मपिक अरुडा होगा ।

उसने कहा सही है । आसमानका बिभष सधे-न-सधे सामनेके मेले इबरेके मूरने बिम्बका बिभष करना चाहिए घायर बहु मेरे जीवन-अरय

के अधिक निकट होगा। सतना बिनाब मुझसे सब भी जाएगा।' उस व्यक्तिके इस बचनमें आत्म-बयाकी हसकी-सी गूँज मुझे सुनायी दी।

मैंने बेचशीसे कहा 'इस आत्म-बयाकी बकरत नहीं। एक सच्चे आर्टिस्टका संघर्ष बहुत बुझावदार होता है। हाँ लेकिन आपकी इमेज बहुत अच्छी है। हम सब भोग ऐसे ही करते हैं जो अपने भीतर सुरजन्य प्रतिबिम्ब धारण किये हैं। पुरा बस्तु-सत्य इस इमेजमें आ गया है। इमीजिए वह महत्त्वपूर्ण है। हमारा परिश्रम भी तो बोझ नहीं है। हमारी ताँत भी तो जलकी उखाड़ी है। करते हुए तो क्या हुआ है तो प्रकृति-बन्धी।'

एकएक बीते मैंने बसकी कमजोर रग पकड़ ली। उसमें आत्म-विश्वासकी कमी थी। जब सिद्ध सीमा छानकर लोप छोड़ा मान खपा बैठे हैं और प्रभावकारी होनेके बहाने हर मामूलीको धीर-मामूली बनाकर बुझाके सामने रखे देखा करते हैं तो जो चीज सही और सच्ची है वह क्यों न पड़े ?

मैंने उससे कहा 'आजकल सचाईका सबसे बड़ा दुस्मान असत्य नहीं स्वयं सचाई ही है क्योंकि वह रेंठती नहीं सज्जनताको साथ लेकर चलती है। आजकलके जमानेमें वह है आडट आँव डेट। थी। इसलिए सत्य जप मुमुक्षु बने चीर बने लमी वह धक सकता है चल सकता है, बिक सकता है।'

बहु और भी अप्रतिम हो गया। किन्तु उसके बेहरेपर भीतरकी सुनीचा रगड़ा उजाला जागैके लिए मैंने उससे कहा "बोरनेस ईज बीनियस (बीजनेसकी अपनी प्रतिभा है)। वह पेटेका वाक्य है। मैं इसे उभरा करके पढ़ता हूँ।" मेरे झीझटी कपड़ोंके झटने मुझे कुछ उत्साहित तो कर ही दिया था (लेकिन क्या मैं सच कह रहा हूँ?) जो ही हम दोनों अब बिना हुए, बहुत बोस्त बनकर बिदा हुए।

हाशियपर कुछ नोट्स

बहुत समय तक मैं कल्पम लिये बैठा रहा। विमुक्त और छोपा-छोपा था। समझते नहीं था कि क्या करें। क्या किरतू और लिननेके पहले क्या सोचूँ।

जरा इस परिस्थितिपर और क्रमाद्दये। यह एक अजीब चीज है। ऐसे क्या लिपना है यह मानुम है। लेकिन वह इससे उतरता नहीं। कमरेके दरवाजेसे बुझते हुए व्यक्ति अन्दर हील पड़ते हैं। किन्तु भीतर जानेका साहम नहीं करते। भीतरबासे उन्हें अन्दर बुलाते नहीं पामद उन्हें कमरेमें न जाना हो तो। उसी प्रकार विचार कमरेके दरवाजेसे साँक जाते हैं अन्दर क्या है यह अन्दाजेसे टटोल जाते हैं, लेकिन भीतर जाना या तो पसन्द नहीं करते या उन्हें शिवा साहस नहीं होता। मैं भी उन अहिमल विचारीको अन्दर जानका विषेय आमन्त्रण नहीं देता।

किन्तु उन विचारोंकी मूर्छें देखकर मुझे एक गदगे-मुझरे जमानकी याद आ गयी जब मैं कॉलेजका एक सज्जन था। तब एक महान् व्यक्तिसे मेरा स्नेह हो गया। वह सचमुचका था या झूठमूठ था मैं नहीं कह सकता। लेकिन यह सही है कि मेरे विचारमें एक छयासी महीनी पुण्य अभी रहती।

अब हाते-हुमाते एक बात यों पैश हुई कि उसने मुझ बाकी क्षमकेमें शल दिया। वह यह कि उसके व्यक्तिगतकी चर बाते कुछ छयासाठ कुछ रबैपात कुछ तर्कों-अन्दाज कुछ और-तर्कके मुझे पसन्द नहीं आवे।

जहाँतक दूसरे व्यक्तिपोंका प्रश्न है मैंने यह कभी नहीं चाहा कि मैं अपनी पसन्दगीको एक मान-दण्ड या तुनाका उच्च पद प्रदान करूँ।

पतन्वरीको मैं बसीटी नहीं मानता । उसे कसीटीका रूप देगरी मुझे न ठग
इच्छा भी न अब ।

बुद्धे चक्षुषिं क्या मैं अपना प्रतिश्रियाभक्ति सहीपनपर विस्वास करके
उस व्यक्तिको दाँ-बीची आँसुसे देखते हुए व्यक्तित्वका विस्लेषण करके
विस्लेषित अंशोंको पुन एक बार इकट्ठा कर उन्हें बिजुपके एक नये पैटर्नमें
नये ढाँचेमें डाल हूँ या बान्तेकी भाँति उस छायाका उद्धारक आत्माक रूप-
में बीजगुण बनाकर बलमगारते हुए आरुच रूपमें उपस्थित करते हुए स्वयं
स्वयं और नरककी हवा खाता रहूँ । संक्षेपमें मैं आलोचनात्मक भावनाको
प्रधान मान किसी लटरन बौद्धिक टागेपर लड़े होकर दुनियाको देखूँ या
स्नेहके भीतर पाये जानेवाले सहज विस्वासको किसी विघात अज्ञाना रूप
देकर बीजगुणकी परम उपलब्धिको प्राप्त करूँ ।

आजसे कई साल पहले मेरे एक मित्रने यह प्रश्न उठाया था । आत्मना
में निश्चय ही एक सूक्ष्म बुद्धि होती है । और मैं समझता हूँ वह बुद्धि उस
मित्रमें भी । बुझे हुए ज्वालामुखियोंवाले व्यक्तित्व कौतिकी वेगम सेते
हुए मले ही अपनेको बर्ण्य मानते रहें छोटी-सी एक सजग चिनगाठी उस
बुझे ज्वालामुख से निस्सम्बेह बड़ी ती है ही वह उसे चुनौती भी देती
है । ताँ उस मित्रने उस अद्वैत विन्मु बुजे ज्वालामुखीका एक ऐसा
बिभूष विचित्र किया कि ये हूरतमें रह गया ।

मैंने उससे कहा तुम्हारे भावनेसे लगता है तुम उन्हें बहुत
चाहते हो ।

उत्तने कहा 'दिल्लकुल । यही मेरी मुश्किल है । बूँकि मेरा उपाक
है कि मैं उनके व्यक्तित्वके हर एक पहलूको सहज भावसे पहचान
जाता हूँ, इसालिए उनपर पुन अचिचार बतानेकी आवश्यकता होती है ।
वह निरापार है । उस व्यक्तिमें कुछ ऐसा कमलकार कुछ ऐसा
सम्बोध और कुछ इतनी ऊँचा है कि मन उनके चारों ओर मेंडराता
है । लगता है कि बस हमेंता उनके साथ एका जाने और कोई ऐसी

विसंगत बात न की जाये जो हमारे सम्बन्धोंमें सौल शकती हो। मन करता है कि उनका कोई बड़ा काम कर लिया जाये अपने हाथसे उनके लिए कुछ तो अच्छा हो।

लेकिन इन भावनाके बावजूद मन उमका होकर नहीं रह सकता। इसलिए कि आरूपको फिरम चतुर्भुज प्रसारित होते हुए भी उस व्यक्तिके भीतर एसा कुछ है जिसे आप 'छोट' कह सकते हैं। वह सारस्व और भौसापन तो उनमें है ही नहीं, इसके विपरीत हर इच्छित काय या वाक्यको ग्यायोपित ट्यूरानेके लिए भाव-विचारोंका मायावी इन्द्रजाल ताननका उमका कुछ इतना बड़ा माहा है कि रगता है कि उसके आसपास आ तमाम मित्र-मण्डली जमा रहती है वह उसको सक्रिय बलात्कीक सिखा कुछ नहीं करती। और वह दसामी काहेकी ?

एक निरान्त प्रतिक्रियाशील रात्रनीतिकी एक अत्यन्त बटोर स्वाय की एक जिम्माबद् भावको - जिसका सम्बन्ध सिद्ध है से है।

मेरे मित्रके चेहरेसे पता चलता था कि वह उस व्यक्तिकी बहुत-सी अन्दरूनी बातें जानता है। बहुत-से ऐसे विविध तथ्य उसके पास हैं जिन्हें वह कभी बखानपर भी नहीं सा सकता। लेकिन फिर भी उस व्यक्तिको वह इतना चाहता है कि अगर वह उसकी तारीफ करनेपर उठर आय तो एक ममी बबिची भाँति वह पूरा व्यक्तिस्व विष प्रस्तुत कर देगा। स्पष्ट है कि सामने बैठे हुए मेरे मित्रमें एक एम्बीबलेम्स एक कुमुंहापन है ! उमने जिनको अत्यन्त हार्दिक काये आहा है उसीका परिव्याप करनपर वह मजबूर हुमा है। इस एम्बीबलेम्सके सिफार दिन कात्री साग देने है। वे एक ही व्यक्तिसे तीव्र पूजा और तीव्र स्नह एक साथ करते हैं। उनकी पूजा और स्नेह - दोनोंमें एक घनिष्ठता है। किन्तु यह घनिष्ठता भी इतनी तीव्र होती है कि एक दूसरेके प्रति विरामका उपनाव जोड़नेके लिए मजबूर रहता है।

इन समय मेरे मित्रका बहुत बटु और बटोर हा रहा था। मुझे यह

साहस ही नहीं हुआ कि मैं उसका मित्रका नाम-धाम पूरूँ। व उसके परम पंडित हूँ। वह उन्हें बात मार सकता है, मैं नहीं।

किन्तु इतना सही है कि धर्मके आलोचना करना भारतीय संस्कार के इतने विपरीत है कि कुछ मत पुष्टि। हम अपने मनकी समझताको मोटरके आलोचकके अधिक प्रतिष्ठित बनाये रखते हैं। यह कितनी बड़ी आत्म बर्चना है! इस आत्मबर्चनाका कोई पार नहीं।

किन्तु यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण है कि आलोचना हमारा तटस्थ और निष्पक्ष नहीं हुआ करती। वह बहुत ही दुष्टिकी बजाय मात्र एक भाषा बन जाती है, और शिक्षका क्रोमियापर उस भाषाकेपर बनावटी धर्म बढ़ देता है। उसकी क्रोमियापरी इतनी मयाक हाती है कि वह हमारी मूल्य बदल देती बना देती है जब कि हम तुर बनने इस समझकी विरुद्धमें रहते हैं कि हमारा बेहतर बहुत सुबमूल्य है। मूल्य यह कि मेरा प्रयास है कि अभी सदासे भगी आलोचना एक मर्मकर शोध है।

यह अनाल विकसित मूल्य है कि आलोचनाका सम्बन्ध बुद्धिसे और धर्मका हृदयसे होता है। मूल्यकारपर लोगोंकी धर्म हृदयसे नहीं बुद्धिसे उत्पन्न हुई है। और उसी मूल्यकारको बहुतेरी आलोचना भगी भाषासे प्रेरित हुई है। किन्तु इस सिलसिलेमें मैं यह भी कहूँ कि कितनी भी व्यक्तिपर एकात्म धर्म प्रकृत है। चाहे वे अपने माता हों या पिता। पहले वे मनुष्य हैं उनका अपना चरित्र है। इस चरित्रको देखनेके लिए आदरक निमल तटस्थ पाप हृदयमें चाहिए।

मैंने समझ सामग में बातें रहीं तो अपने कुनी होकर मेरी तरफ देखा। उमर बताया कि हृदयका व्यापार सभी जगह है। मुझ आरंभण विद्वान और प्रेम-प्रमथ - इन सभी जगह उसके सम्बन्ध हैं।

इस समस्याको अरा आप समझिए। इन पूरे प्रत्येक बीच एक विशेष प्रकारकी भावना है। इसे आप दार्शनिक भावुकता कह सकते हैं। मैं उस व्यक्तिमें व्यक्ति नहीं किसी युग-व्यक्ति या सत्ताका दर्शन कर रहा

है। इसीसे वह व्यक्ति मुझे प्रिय है। किन्तु क्यों ही उस गुण-व्यक्तिको मैं परिचित होते बेजुगाना मैं उस व्यक्तिको छोड़ दूँगा और उस व्यक्तिको यह समझमें ही नहीं आयेगा कि फुल्ल-फुल्लाने, जो अबतक मेरा मन्त्र था मेरे यहाँ आना क्यों छोड़ दिया।

उसने कहा मैं मानता हूँ कि यह एक सम्प्रेक्षित आत्मग्रस्त रचना है। किन्तु वह कितना खूबसूरत है! मित्रके व्यक्तित्वमें गुमाकी अपेक्षा किसे बिना मैं कैसे रह सकता हूँ? उसमें उन सुगोंका जो पूरा मनोहर समुदाय है। वह यदि न हो तो बतारप मित्रता मोहित कैसे हो? उसमें वह झलक कैसे पैदा हो? यदि एक दूसरमें सुगोंकी अपेक्षा न रहे तो मित्रता रह नहीं सकती — और चाहे या हो। एक विशेष प्रकारके स्नेह का नाम मित्रता है। वह अपने प्रियके पूरे व्यक्तित्वक आकलन-ग्रहणपर टिकी हुई है। मैं उस बोस्तीको बाँध नहीं कर रहा हूँ जिसे आप किर्क सामाजिक अर्थमें छेदे है।

मैंने कहा, यह सब सही है। लेकिन भय तो यह है कि कहीं उसक गुणके आकलनकी आकमें अपनी पसन्दगी तो उस यथापरा नहीं होप रहे हैं। मानव-यथापरा का तागा-बाना बहुत गहरा और सूक्ष्म होता है। हमें उस यथापरा सिद्ध विरलेपण करके छोड़ देना चाहिए। यदि वह बिस्लेषण हमारे अनुकूल न निकले तो दुःखी होगयी बरकरत नहीं और सचमुच अनुकूल निकले तो बात हो गया है। बाह-बाह!

मित्रने कहा 'यह बात हम नहीं मानते। यदि हमारे हृदयके सम्बन्ध है तो हम उनके आचारपर इतना तो कहने ही कि तुम्हारी प्रतीति बात पसन्द नहीं और प्रतीति बात पसन्द है और हम चाहते हैं जो बातें हमें नापसन्द है तुममें वह ही नहीं। अगर किसी पराये आदमीके सम्बन्धमें यह बात होती तो बाग अलग यो।

मैंने कहा 'यह तो ठीक है। किन्तु जो मित्र आपके अध्येय है उनसे दूरी तो आप बनाये रखते ही हैं। एक और स्नेह और दूरी और दूरी

मी । इस संसदमें सब मद्दबद्दशात्म हो जाता है ।

उसने मुस होकर कहा 'अब तुममें सम्झपर हाथ रखा । मित्रके प्रतिष्ठ सम्पत्के अलावा उससे जो हुमन दूरे जायम करके रखी है तो उही दूरीके बूहर अंतकमें सब पाप-छायाएँ इकट्ठी हो जाती है । ठीक है न वे ?

मैंने कहा बिलकुल ठीक है । अगर एस व्यक्तिकी हम आलोचना करनी है तो पहले उसे अपने प्रतिष्ठ विरवाचमें लकर फिर उस बीरे बीरे उठ मोड़की तरह न आना चाहिए वहाँ हमें अपने विरवाचकी बात करनी है ।

मैंने कहा मर्मी आलोचना चाहे जितनी निरपरा और बेसाय रिवायी है ऊपरसे चाहे जितनी फ़ौर और गुरगुरी हो अन्तत उसमें एक बड़ी भारी भ्रष्टा होती है और वह कि मनुष्यमें सुधार किया जा सकता है यह कि मनुष्य अपनी सीमाओं और कमजोरियोंके ऊपर बठ सकता है यह ऊपर उठकर उस विद्याके उच्चतर क्षेत्रका भागी हो सकता है जिसे हम संस्कृति विज्ञान साहित्य या बचान अथवा अध्यात्मका क्षेत्र कहते हैं । यह भ्रष्टा व्यक्ति-विरोधपर भ्रष्टा नहीं है किन्तु उसके सुपुत्र या आपस सामर्थ्यपर भ्रष्टा है कि यदि वह चाहे तो अपने कर्बोंपर ही चढ़ सकता है । मरुतब यह कि इस बुनियादी भ्रष्टाके फलस्वरूप इतना सारा साहित्य लिखा गया है ।'

मैंने मित्रके विरवाच और संघम बोलेके समन्वित भावसे मरी तरह देखा और कहा 'मे सब बिबेरीकी बातें हैं अपनी आगू रही हैं । किन्तु उतका मतलब तो अमलमें लानमें ही है । और अमलमें जाये जानेकी प्रक्रियामें अमलमें लानेवालेकी सारी बुराईयाँ सीमाएँ और कमजोरियाँ इतनी अधिक प्रकट होती हैं कि कर्बमें कर्तकी बाह्यार अमल बिलके प्रति जाय किया गया है वह व्यक्ति बीखमा बटता है । वह व्यक्ति उस आलोचनापर फिर विरवाच नहीं कर पाता ।

इन बातोंको सुनकर हम दोनोंको हसी आ गयी। बात बिसकुछ माफूस है। आलोचनाका काय बरतुत सिद्धान्तके प्रकाशके बलाबा एक मूरव कीघल भी है। मैने ससते कहा इछीसिए कहता हूँ कि हम आलोचना करते बहुत गल्तियाके लिए कम-से कम पच्चीस-तीस प्रतिशत हाथिया छोड़ दे - अगर हम 'है' के बरक हो सकता है 'सम्भव है' 'कदाचित् यह भी हो' इस चीरसे बात करें और मानबजान और अपने स्वयंके ज्ञानकी सारात् सीमाएँ प्रत्यय ध्यातमें रख उठना माझिन अपनेको और दूसरोंको प्रदान करें, तो बहुतेरे हृदय-दाह समाप्त हो जायें और हारिक तथा वैचारिक आदान प्रदान अधिक सुधम या सरल हो। क्या ये प्रसत कह रहा हूँ ?

मैने अपने मित्रकी आँखोंकी तरफ देखा। मुझे लगा कि वह मुसस सहमत है।

■

सड़कको लेकर एक बातचीत

हन्दोरमें मेरे बरके पड़ोसमें सेमसका ऐसा विद्यालय छलमुज बूध बा जिसपर हजाराँ कौए बैठे रहते । सुबह जाँव कुमठ ही कौनोंकी विविध काँव-काँव कार्गोंमें समा जाती । घामको जब आसमानकी लाली छँवजाने लगती छ। उनकी पुकारमें एक अजीब उबास तेजी आ जाती लगता कि मनके भीतर जा बहुत-कुछ बबा है वह सम्मिस अस्पष्ट औषड़ बर्कय छम्ह-स्वर्गमें बाहर एकदम निकला चाहता है ।

इन दिनों मेरी हाकल लगभग यही है । उरु इतना ही है कि मैं कुछ मिला बात कहना चाहता हूँ बूँकि मैं कौवा नहो हूँ । जो नहीं कहा गया है वह घामको पर लीटते बइत रिमाणकी बीबारेसे टकरा-टकरा बटता है ।

बिचाराम एक विविध प्रकारकी उत्तेजना होती है । इस उत्तेजनाको यदि पी लिया जाव छो वह जिसको तकसीछ देती है । मैंन सिख शासनकी भी बहुतेपी कोषिण की । लेकिन जिम्बा बात इतनी धीमठा-गूर्णक अपनी शाया-शबासाए विकसित करती जाती है, उन्हें फँसती जाती है कि मुश्किलोंवा सामना करना पड़ता है । उसक जिम्बा विकासकी बतिके पाव-साव आकस्मधील मनकी बति बराबर बनावे रखना बहुत कठिन हो जाता है । यह मामूली अइसन नहीं है ।

लेकिन इतनमें मेरे एक मित्र आ ही गये । उन्होमें जो कुछ मैं हूँ उससे पिण्ड छुड़लका काम किया ।

मैने मुम्कुराकर कहा 'बड़ा अच्छा हुआ आप आ गये । कुशल तो है ?

उन्होंने जवाब दिया 'मेरी रचना बापिस भा गयी ।'

मेरे माथपर बल मे । मैन चिन्तित होकर पूछा ऐसा क्यों ?

उन्होंने कासब सामने रख दिया । सम्पादक महोदयने कुछ पंक्तियाँ निकाल देनेका आदेश दिया था । रचना बहुत अच्छी थी । वे खुद ठारीक कर गये थे । उन्होंने हा माँगो थी इसलिए भेज नी हो गयी । सम्पादक सखन साहित्य-अकादे के एक नवा भी हैं । उनकी बातमें एक बजत है । ब पन्मीर ब्यक्ति है । ककावा मम समझते हैं । मबयुवकोंको प्रोत्साहन देनेकी बुद्धि नहीं बरन् मयी प्रत्यात्की मौलिकता और सूक्ष्मबुद्धके कायक होनेक कारण वे मयी प्रवृत्तियोंमें रुचि भी बहुत अधिक करते हैं ।

उनके विचार मुझे नहीं बमते । किन्तु फिर भी ब मेरे लिए धीर मरे मित्रक लिए आदरणीय है । यदि विचारोंमें मेरा उनसे मतभेद हा बाठा तो बहू निबदनीय बात न होती । बहू स्वाभाविक ही था ।

मेरे विषय बबल दिया है । मग बीसे कहीं अनावश्यक बपते कुछ रहा था ।

किन्तु मरे मित्र अशोक आदमी थे । एक बरसेसे में यह साब रहा था कि उन्हें डीट वू । डिबूक मिसते रहनेकी उम्ह आदत थी । पहले-पहले मुझे मान हुआ कि वे अच्छे आये । बरा घण्टा रहेगा । लेकिन अब उन्होंने बरनी मयी कविताको चुबटना बठामी तो उनपर में पनाश सुम्प हुआ । यह सही है कि वे बहुत अच्छा सिपते हैं । उनके माप मब यह है कि वे साहित्यिक दुनियामें रात-दिन रहना चाहते हैं । मेरा स्वभाव या सिखाम्य या प्रवृत्ति कुछ ऐसी है (मरे न्रयामसे जो घायद बही भी है) कि जो बरदिन साहित्यिक दुनियासे बितना बुर रहेगा उसमें अच्छा साहित्यिक बननेकी सम्भावना बतनी ही पयादा बड़ बायेगी । साहित्यके लिए साहित्यसे निर्बाधन आवश्यक है ।

वे सखन साहित्यिक दुनियाकी सब खबरें मुझे बमामे दे बाया करते हैं । उनकी लम्बी चौड़ी खतो-बिताबन है । उनके परिश्रमक प्रति सराहना

का भाव भी मुझमें है क्योंकि मैं ~ बैसा नहीं कर सकता । न मानुम
फिर भी ही वास्तविक धीर इह वार्त मुझमें नहीं हो पाती ।

मेरी बेइच्छा का मजा लेते हु (बहु मेरा पार बोका वहाँ जापकी
बड़ी छायी हो रही थी ।

मेरे मनमें सबसे क्या कहाँ-कहाँ ? बोली-बोली बस्ती कह डालो ।
बदामन उसे कहा 'क्यों क्या बात है ?'

उत्तने बम्भीरतापूर्वक जबाब दिया 'नहीं जापन्ने बहु बात बहुत
पसन्द आवी ।

पर मुझे सिर्फ इतना निकला सब ?

अपना भाव क्या वास्तविकी मुझे भावत है । यह मेरी बौद्धिक संस्कृति
है । इसकी वो विशेषताएँ हैं । एक मीठर-ही मीठर दूसरी-ही दूसरी
अवमलना करना । दूसरी हृदयेवा बनिस्वात लेकर बसना संभवतया
बने रहना । दोनों बातें बड़ी अच्छे हैं । वे मुझे दूसरोंसे अछूता छोड़ बैठी
हैं अत्रमाविठ अलग और निःसंभ । इससे बहुत-सी सामाजिक तकलीफें
बच जाती हैं । किन्तु इसमें एक आत्म-विराघ भी है । यह निःसंगता
बहरी ही अकलने लगती है । मन चाहता है कि संभो-आयी रहे । मन जगमें
पुके-भिडे । आशाक प्रदान हो । मस्ती रहे । नशा रहे । यह संभवतः जीवन
किस नामका ?

अपन द्वारा तैयार की गयी यह निःसंगता बुझारी ठसवार है । यह
स्वयंपर बोट करती है । किन्तु मजा यह है कि सब कुछ जानने-बुझनेके
बाद भी निःसंगता भी साथ रहती और उसे दूर करनेकी कापिछ भी ।

जब आप समय परसे होते कि मैं अपने इन अवांछनीय विषयों अपने
साथ क्यों हिलकने देता हूँ । लेकिन जब इसने मेरी छारीकरी पटना
नुभयी तो मेरी जगती भाग मयी । तथा कि मुझे पढ़वानेवाले लोग भी
मीठर हैं ।

लेकिन मेरा दोस्त पहले करनेका पावी ना । इसकी पातोसि पत्रा

बल गया कि वह उसको एक खूबसूरत किबदली थी। फिर भी मैं खुश हो गया। उसे मेरी इतनी जिज्ञासा थी कि मुझे गम्भीर देखकर वह हँसाना चाहता है। मुझे दरबाजेसे बाहर निकालना चाहता है।

और, फिर, अकस्मात् अपने मुँहपर आ गया मेरा दोस्त।

उसने मुझसे पूछा 'जो कुछ आश्चर्य बल रहा है नयी कविताके सम्बन्धमें उसमें अभिव्यक्ति भी एक 'रोस' है। है न ?

वह नाचने हँस लक सही कह रहा था। कविताके बोधके स्तरामें (यदि उसे स्वीकारना चायें तो) बाँते आदेशके साथ किन्तु साँझ-साँझ कह ही गया थी। उस अंशके पृथक् भाव स्वरूपमें कही गयी थी। अन्त में एक स्वरूपके क्रिया तथा था। दोनों स्वरूप अच्छे से। किन्तु मध्यके स्तरामें मान्यताग सुकृष्ट आदेशके साथ प्रकट होना सुकृष्ट किया। सुमे-सुल सुभरे परम पठार-सा वह अंश न केवल बहुत अच्छा था बल्कि सही भा था।

समाजमें पायी आनवाणी कुछ अस्मरवादी प्रवृत्तियोंपर उसमें गहरे चोट की गयी थी।

बस कविता यही कमजोर हो गयी।

अब इनके साथ-साथ एक तथ्य और लीजिए। मेरे एक परम मित्र मित्र 'आश्चर्य' में एक खेद लिखते हुए बोधना की जो कि नयी कवितामें हृदयके आदेशके आदेशात्मक विषय जोश और आदेशका विशेष स्थान नहीं है। हो सकता है कि आधुनिक कविता गहरी न मान्य हो। किन्तु वास्तविकता यही है कि उसमें आदेशको स्थान नहीं। आश्चर्यकी कविता बोधिक और आश्चर्य है।

"इन वास्तविकताको मैं स्वीकार कर सकता हूँ। किन्तु उसे मैं परिचित कराना चाहता हूँ। मैंने अपने सामने ही" हुए मित्र से कहा।

बीर, स्वयं कुछ उद्दिष्ट होकर बोड़ा "इन आवेशको काट देनेका काम मतलब है !

मित्रने कहा 'बिल्कुल' यह कहता गया 'जहाँ आवेश स्वभावतः नहीं है, वहाँ आवेश या आवेग छाया बिल्कुल समझ है। पुरानी कविता यही किया करती थी। किन्तु दिग्दर्शीमें तो आवेग है, आवेग उठेन, चिन्ता बीर छीम है। ये उसे निकाम देनेवासे कौन होते हैं ?'

मैं फिर मुसकराया। बारमें मैंने कहा 'यही पहली बात - नबी कविता आधुनिक भाव-बोधपर बसती है। स्वीकार है हूँ। वहाँ यह मायता है कि सबका आधुनिक भाव-बोध समान है। किन्तु यह दुर्बलता सूचित करती है कि आधुनिक भाव-बोधमें वह हिस्सा शामिल नहीं है जो आवेग-मूलक है। भाव-बोध करनेवाली बुद्धियाँ इतनी मिश्र भी हो सकती हैं और होती हैं कि अभिव्यक्ति भी मिश्र-मिश्र हो जाती है। नबी कविता सम्बन्धी एक अभिव्यक्ति मात्र 'यह यह सकती है, लेकिन आवेग-यत्न' नहीं। दूसरी अभिव्यक्ति नबी कविताका विम्वार अपनाते हुए जो आवेग-यत्नको यत्नार्थकी संवेदनाके रूपमें प्रस्तुत करना चाहती है - इसलिये कि दिग्दर्शीम बेसी परिस्थितियाँ हैं।

मेरी ही बातको उठाने और अच्छे ढंगसे कहता जाया। उसने कहा 'यह आवेग दिलमें एक छाप पँदा करता है एक कड़ुआहट भर देता है। इसलिये यह व्यपता नहीं। ऐसे आवेगको निकाल फेंको। इसलिये कि यह आवेग प्रतीकात्मक रूपसे प्रकट नहीं किया गया है। यदि बीसा होता तो सहनीय हो जाता। सम्मानको क्या कि यह आवेग व्यक्ति सम्बन्ध है, व्यक्तिगत है आत्मीय नहीं। लेकिन इसे ऐसा क्यों क्या ?'

मैंने उसके जवाब दिया इसलिये कि यह बौद्धिक रूपसे भद्र नहीं है। हममें निर्णायक बात बौद्धिकता नहीं भद्रता है। (कवितामें किसी वाक्यका प्रयोग नहीं किया गया था या कोई अर्थ रखी अपनायी नहीं गयी थी) यह भद्रता किसी इस्तेमाल नहीं है बल्कि यह बड़ी राजधानियोंके

कुमीन भर बरामशोंकी चम्पटाके काम्पेबसेब चोर करती है । ये बड़ी बड़ी प्रांतीय राजधानियां अब दिल्ली-जैसे बरह-कैपिटलमें समा रही हैं । इनमे चहरोंकी तरह सिचते आ रहे हैं ।

उसको यह बात कुछ तो समझमें आयी और कुछ नहीं । उसने सिर्फ 'हां-हां' कहा ।

मैंने अपनी बातबा स्पष्टीकरण करते हुए कहा 'नयी कबितामें दो सबसे काम कर रहे हैं । एक वे जो आते-पीते बगके सुमिश्रित लोग हैं । उन्हें खूब अच्छी फुरसत है । उसबा वे सवुपयोग भी करते हैं । उन्हें मूल्यभूम पुस्तकें मुलम है । वे जमा-कुशल भी हैं । इसके असावा उनमें-से बहुतोंमें वैज्ञानिक दृष्टि भी है ।

'तुम चहरके या इस्बेके अय-यइ तरीक सोम हो । तुम्हारी परिस्थितियोंमें जीवनका मानवीय यबाध रक्ताल है । तुम एक यन्त्रकामें तिस रहे हा । बही जैयो हुई हालतमें तुम मानव-सम्बन्धका साध्याकार करते हा । तुममें सोम और शोकपुम यपाबके संक्रमके प्रति आबन्धक प्रति आबन्ध हीना स्वामाबिक है । उनमें इस व्यापहको अच्छी निपाहसे नहीं देता जाना । तुम्हारे अपने यपाबमें तुम ग्यायपुम संशोधन चाहते हो । उनके लिए यह कार्य उनके जीवन-सम्बन्धमें रहित है । अपने-जो बीसनेवासी परिस्थितियों और प्रकृतियोंको उनके मंगे पाद्यबिक रंगमें देव मत करो । यह कला नहीं है ।

'बना वे ऐसा खुलकर बहो ? हरानिब नहीं । वे मूक पीड़े हो हैं जो सबके ब्रैबके मात्रम बने । किन्तु वे नयी कबिताके बिग्यामके सम्बन्ध में भी अभिरुचि धननाते हैं बह ऊपर ऊपरने निर्दोष होते हुए भी उसना प्रयास वे इन प्रचार करते हैं कि उपतामूलक आलोचनात्मक काम प्रयास मानना रिस्किबेबन न बन पाये - बह सड़क छान हो बनी रहे ।

'अभिगधिके संस्कारका ठेरा जन्हेनि हो नहीं निपा है । बनर बाही तो हमें तुम भी खूब अच्छा निगार सक्ते हो । किन्तु जनकी कला

कुछमताकी उपेक्षा करना या जतनर अपना स्वयंका अधिकार न करना प्रकृत है ।

मेरे इस प्रेय-बालनको मेरा मित्र ध्याननुबक सुनता रहा । उसने सिद्ध इतना ही कहा "हाँ आपने मेरे दिखकी बात कह दी ।

किन्तु वह और भी जागे गया ।

उसने मुझसे जो कुछ कहा वह मेरे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । उस बातको मैं अपने चर्चमें रख रहा हूँ

"काम्य-सत्य भावना प्रसूत है किन्तु उस काम्य-सत्यका नैतिक उत्तरदायित्व है । हम इसे केवल काम्य-सत्य कहकर नहीं टाल सकते । वह सत्य हमारे व्यक्तित्वके कुछ भाग करता है ।

मैंने कहा कि "हाँ जो गुड नाट डेज" अबर शोन बकात । हम यदि प्रतीक नम्यवयमें पैरा हुए हैं तो हम उसकी भावस्थितियोंको चकर बतायेंगे । प्रसन्न विषयका भी है और बुद्धिकोपका भी । हममें-से बहुतेरे, ऊपरकी श्रेणीमें मिल गये हैं । वे हमारी भावनाएँ प्रकट नहीं करते कोई बुझरी बुद्धि प्रकट करना चाहते हैं ।

वह मनुकुराया और सायद उसकी आँखोंके सामने वर्र ऐसे साहिबिकाके दुःख बिले जो स्वयं बहुत प्रतीक परामेमें ही पैरा हुए वे किन्तु अब वे अपनी जगम-यात्री भरतीस पराये हीकर न उपरकी श्रेणीकी उपसम्पत्तिका वास्तविक निष्कर्षमें रम सकें न अपने जगम-यात्रीकी पीड़ा-भरी विवेक-बुद्धि ही अपना सके ।



एक मित्रकी पत्नीका प्रश्न-चिह्न

आप मुझे सब कहनेकी इजाजत हैं तो मैं आपसे यह निबन्ध करना चाहूँगा कि व्यक्तिपंथ मेरा सम्बन्ध बहुत अजीब छिस्मका है। इसका कारण यह है कि व्यक्तिपंथका जो विरलेपण मने अपन ठई कर रखा है उसका उस विरलेपणसे कोई सम्बन्ध नहीं है जो मैंने सब व्यक्तिये बचनके लिए अपने लिए तैयार रखा है। मसलन हमारे एक दोस्त हैं। बहुत साधारण व्यक्ति हैं लेकिन अगर आप उनका विरलेपण करते जायें तो वे केवल असाधारण प्रतीत नहीं होंगे बल्कि उनमें आपके विश्ववल्ली भी बढ़ती जायेगी — एक प्यारी वैज्ञानिक शिष्टम्बी। हाँ उनके बारेमें तबभी और सही रायके लिए यह जरूरी है कि उनके प्रति देखनकी आपकी दृष्टिमें कोई सूक्ष्मसे सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक स्वाय भी न हो। लेकिन मुझमें तो बहुततेरे सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक स्वार्थ हैं। इसलिए मैं एक विरलेपण तो ऐसा तैयार करता हूँ जिसका अन्तिम उद्देश्य केवल अपनी आत्मगया तथा उसके सम्बन्धमें अपनी दुइताकी और मजबूत करना है। मैं जिन मित्रका बिक्रम किया मुझे मालूम है कि अमुक समय अमुक अवसरपर, अमुक प्रकारसे वे मेरे हृदयके इच्छुक होंगे — यानी कि मुझे किसी-न-किसी गहरी उलझनमें बाध देंगे।

उन मित्र महोरपने मुझे एक उमानेमें बड़ी प्यारी मरत की है। वे मेरे संबन्धिता रहे हैं। उन्होंने आ मेरी मरत की वह हस्तामनबन्धु भी हाथ का मेल भी यद्यपि वह मेरे ठई महान् सहायताके रूपमें ही जायी। मुझे वह महायत्ना प्रदान करनेकी बबहसे उन्हें तपस्वीय तो कुछ हुई ही नहीं

अनुपिपासा तो सवास ही नहीं उठता। लेकिन जब ब (मान लीजिए) मुझे भी गयी उस सहायताके फलस्वरूप मुझपर अधिकार तो क्या एकाधिकार माबसे कुछ ऐम मुसाब (मेरे लिए वे बाईप है) है रहे है जिन्हें अमलमे खाना मेर लिए बहुत ही नामुमकिन है। वे कह रहे है कि मेे छाब भर, उनके साथ उनके चरपर रहे। इसका मतलब यह हुआ कि मेे उनकी मुसाहिबो कहे। बस उनके दरबारमें उठा रहे। उन्हें मेरे समय की कोई क्रीमत् नहीं है। कहनेको तो उन्होंने यह कहकर रक्खा है कि मुझे उनकी बीबीको लाजिक पढ़ाना होगा। पहली बात तो यह है कि उनकी बीबी कभी कोई लाजिक पढ़ नहीं सकती। वे इस्ताबिककी सीबी-साबी मुठकुराहट है। असलमें मेरा पेरा यह होनेवाला है कि मैं न सिर्फ पतिदेवकी बरन् पत्नी-अहोदयाकी भी हूषय-गाभाएँ मुना कहे। 'हूषयकी गाभाएँ' एक ऐसा शब्द-समूह है कि रातमें डरकर नीबसे छठ बैठता है। इसका कारण है। यह श्पति सारी बातोंमें एकदम ब्याबहारिक है लेकिन मेरे शति आबहयवतास अधिक भाबुक है। मैं आया कि उन्हें ऐसा लगता है जैसे पिटरईका बाल जा गया हो। उनके सेखे मैं बहुत सीबा-सारा बहुत नला-भोखा (यानी बयनीय कपडे निबुड - मुस बनकी कैसे कहे) हैं। बस यही मेरी सबसे बड़ी निशेयता है। अब उन्हें कैसे कहे कि मैं उनसे बचनेके लिए कई तरकीबमें चलता हूँ, कई बानों एक साथ बना जाता हूँ। मैं बस्तुतः उनसे मुचा करता हूँ क्योंकि उनके प्यारमें एक नाटकीयता है एक मनपोर आरम बड माब। स्पष्ट है कि उनकी बीबीको लाजिक क्या पढ़ाऊंगा अब उन्हें देखते ही मेरे चरपर भी इस्ताबिक सघार ही जाता है मुसम न मास्तुन कैती बिरकिठको पिठबी माने लगती है।

मैं उनसे एकदम दूर और बहुत दूर दिनक आना चाहता हूँ। लेकिन जबतक मैं इन शहरमें हूँ यह असम्भव है। फिर मैं यह सोचन लगता हूँ कि आदि। वे मुझ इतना चाहते हैं वो इतम उनका क्या बोप है। वे अपन 'हूषयकी गाभाएँ' मुसे नहीं मुनायेंगे तो और किसे मुनायेंगे। यह

मेरी महान् मह-बुद्धि है कि मैं उनको टाकना चाहता हूँ और अपने इस मनोवैज्ञानिक स्वाध्याय प्रेरित होकर मैं उनका विश्लेषण करने लगता हूँ। यह उलट है। यह अर्नगद है। यह स्वाध है।

किर भी इस स्वाधका एक एठा पहलू है जिसकी मुझे रला करनी है। यह मेने उन्हें आरम-समपन कर दिया तो समझ सीजिए कि मेरी घामठ का मयी। मेरे बाह-बहने मेरा स्वधका व्यक्तिगत जीवन मेरा पुनका निरुता-महना - यानी मैं-मैं-मैं - !!

- यह 'मैं' बैभाव नीलाम हो जायेगा। मैं इतना सस्ता नहीं हूँ। उन्हे मुझपर सपकार क्या किया मेरी सारी जिन्मी लरी-नेकी उन्हेन नैतिक लमठा या ली। और अब वे इस नैतिक दृष्टिमें उनसे अपने कुत्सनके समय मेरी निजी उपस्थितिके उनके अपने अधिकारका वे जो निमम प्रयोग करते हैं तो मैं हूरठमें रड़ जाता हूँ। उनकी यह अधिकार मानना मुझ अत्यन्त अधिकेकपुन मान्य होती है। और सिद्ध उसे ही बरवा देनेके लिए मैं कल उनके यहाँ नहीं गया।

केकिन मैं सोचता हूँ कि नैतिक दृष्टिमें प्राप्त अपना अधिकार छोड़नेके लिए कोई भी तैयार नहीं होता। मैं तैयार नहीं होता। आग्रि कनडोरीको अधिक ठहरनेके लिए मैं भी तो मनुष्य बन जाता हूँ। इसलिए उनको मनुष्योचित कमडोरीको मैं क्यों न मानकर चर्ने। और जो कमडोरी सब मनुष्योंमें हो सकती है वह कमडोरी नहीं बल्कि मनुष्यकी प्रकृतिका पुन-धम है।

इसलिए व्यक्तित्वके विश्लेषणका कोई दूसरा रूप होना चाहिए। मेरा अनुभव यह बतलाता है कि साधारणतः व्यक्तित्वका विश्लेषण करने समय विश्लेषण अपनी प्रकृति और स्वभावका ही अधिक प्रयोग करता है (यह स्वाभाविक ही है) किन्तु मुननेवालेको दिलचस्पी समके विश्लेषणमें न बरकर, उस विश्लेषण-कर्ताकी प्रकृति-स्वभावके

परादा बढ़ जाती है। यह होता है। धारने भी इसका अनुभव किया गया। तब बड़ा मजा आता है।

विरलेपन-वर्तक विरलेपनसे अधिक जहाँ विरलेपन-वर्तकी स्वयं महत्त्वपूर्ण बन जाये वहाँ मनुष्य सम्भावका बना रहता। इसीलिए मैं कहता हूँ कि विरलेपित और विरलेपकके बीच जो विचित्र और विरोध मानव-सम्बन्ध होता है उसकी विचित्रता और विविधता में ही प्रामाणिकता विषय होनेके कारण मैं साधारण लोगोंके विरलेपनोंपर अधिक विरोध नहीं कर पाता। इनसे बचना तो यह है कि विरलेपित और विरलेपकके बीचके मानव-सम्बन्धोंका अध्ययन किया जाये और उन मानव-सम्बन्धोंके सम्बन्धमें ही विरलेपित और विरलेपकका भी अध्ययन हो।

बुल विचार में अपनेको बहुत ही मुक्ततापूर्ण स्थितिमें पाता हूँ क्योंकि मैं भी विरलेपक हूँ और (विरोध मानव-सम्बन्धोंके आधारपर ही) विरलेपन करता हूँ। तब मैं अपनेसे यह पूछता हूँ कि क्या मानव-सम्बन्ध-रहित हाक पानी अपनेसे ऊपर उठकर व्यक्तित्व-विरलेपन सम्भव है ? या तब तक रहता है यह विचारपूर्ण सम्भव है। मनुष्य अपनेसे परे का सचता है। वह जाना भी है, गया भा है और जायेगा भी। विभिन्न प्रकारसे प्राप्त अनेक तथ्योंका संग्रह कर वह अवश्य व्यक्तित्व-विरलेपन कर सकता है और उद्यम किया भी है तथा वह करता भी जायेगा।

विशु उमका विरलेपन सही ही है इसका क्या प्रमाण ? इनकी कौन-सी कमी है ? क्या वह छापील हाथ रखकर यह कह सकता है कि इसका विरलेपन एवम नश्य है ? अगर मुझमें पूछा जाये तो मैं कहूँगा कि मेरे मन ऐसी किसी कमीकी आवश्यक है। ही अपने अनुभवसे मैं यह कह सकता हूँ कि अमुक अमुक नियमसे संस्था है - कुछ काही और उठकर। लेकिन मेरे अपने अनुभवको ही मैं तत्परी कमीकी नहीं मान सकता क्योंकि अपने किसी भी अनुभवको ही मैं तत्परी कमीकी नहीं मान सकता क्योंकि मेरे किसी भी अनुभवका एक हीमा मेरे अपने

प्रकृति-स्वभावसे उत्पन्न हुआ है। हाँ यदि यह अनुभव सावजनिक हो
 साम हाँ ताँ उसमें सत्यताकी मात्रा बढ़ जाती है। फिर भी अनुभवको
 अन्तिम कसीटी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह बीजा-कारण-निर्मित है।
 साँझेटीउठो बहुत बुरा आरामी कहकर ही फाँसी भी मयो थी। और
 अनेक सहोद अपने जमानमें बहुत बुरे बनकर हो मरे।

मैं इस पूरी उलझनको पुरो तरह मुझमा नहीं पाता। यह कठिन
 है और इसीलिए मैं अपने किसी बिस्लेषणको अन्तिम माननेसे इनकार
 कर देता हूँ।

पता नहीं क्यों सोम स्वयं-कूट बिस्लेषणपर जितनी दुःख आरपा और
 विद्या रखते हैं वह मुझे बड़ी ही अविशेषपूण मालूम होती है। इसका
 विपरीत मैं स्वयं भी जो 'ब्रह्मानिक व्यक्तित्व-बिस्लेषण' किये रखता हूँ
 वह मुझे समाधान और संतुष्ट नहीं देता। देखिए न।

व्यक्तित्वके न मालूम कितने ही पदछूँ हैं जो मुझमें छिपे हुए हैं
 जैसे पंखुटीके भीतर पंखुरी अथवा प्याजकी परतोंके अन्दरकी परतें।
 इनके असाधारण व्यक्तित्वका जो रूप मात्र हमें दिखायी देता है, बड़ातक
 स्वामी है हम नहीं कह सकते। तीसरे, सबसे बड़ी बात यह है कि
 व्यक्तित्वके निर्माणको काय-कारण-परम्पराका यदि अध्ययन करें तो आप
 देखेंगे कि व्यक्तित्व-निर्माणमें चेतन-मनका योग बहुत ही कम होता है
 और उसमें कम योग संकल्प-शक्तिका। दोनोंके योग निस्सम्बन्ध कम
 होते हैं किन्तु होते हैं बहुत ही महत्वपूर्ण - इतना महत्वपूर्ण कि उन्हींके
 कारण मनुष्य मनुष्य है। फिर भी आप जिसे व्यक्तित्व या चरित्र कहते
 हैं वह चेतन कामके बहुत बाहर की चीज है। माँगों हीरेको पारण निय
 हुए एक सिपा। आत्म-साक्षात्कार बहुत आसान है स्वयंका चरित्र
 माँगान्कार अत्यन्त कठिन है। मैं अपना चरित्र-साक्षात्कार नहीं करता
 केवल अर्थात् चरित्र बिस्लेषण करने बैठ जाता हूँ। और मैं जब उनके
 सम्मुख इस प्रकार बिस्लेषण करने बैठ जाता हूँ तब उन्हें आघात होता

है इसलिए कि उनका चरित्र उनकी भाँखोंसे मोटा है और जब वे मेरा चरित्र-विस्लेषण करन लगते हैं तब मैं भी झूठ हो जाता हूँ क्योंकि मेरा चरित्र जो मेरी भाँखोंसे मोटा है। यद्यत्तव यह कि हम भाँखोंसे मोटा अपने कोनोका धिक्कार किसीको करन देना नहीं चाहते।

यह चरित्र आत्म-निर्मित तथा परिस्थिति-निर्मित होनेके कारण हम निर्घोषक महत्त्व आत्म-वृत्तका हैं या परिस्थितिको—यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका जवाब सन्तोषजनक और समाधान-कारक कपसे बखतक नहीं दिया जा सका है। ईसे भी पहले मुझों जायो कि जगदा - इस प्रश्नका उत्तर समाधानकापी कपसे नहीं मिला है? आत्म-मन और परिस्थिति पर एक ही वास्तविकताके दो अंश हैं। और इन दोनोंमें ऐसे सहारे अन्त-सम्बन्ध है जिनका सही-सही पृथक् ध्यौरा देना नामुमकिन है।

इर्माकिय साहित्य मनुष्यक आध्यात्मिक सत्सात्कारके बिम्बोंको एक माटिका तैयार करता है। ध्यान रहे कि यह धिक्क बिम्ब-माटिका है और उसका साथ सत्यत्व और जीवित्व मनुष्यके जीवन या अन्तर्जगत्में स्थित है, क्योंकि सभी मनुष्योंके अन्तर्जगत् होते हैं, इसलिए उनके जीवित्व और सत्यत्वकी अनुभूति सार्वजनीन होती है। किन्तु ध्यान रहे कि अनुभूतिका होना सत्यत्वकी कठोरता नहीं है। और इन साहित्यमें उन जगत् ही जगत् उल्लेख हमें करन नहीं सत्यता एक पध्दविच्छेद, एक रिखा कृष्य एक शमसेष्यन एक आवास ही मिलेया एक रीतनी ही मिलेयी - किन्तु एक रीतनी। सत्यता प्रकाश सत्यसे मिल है? साहित्यमें प्रकाश ही प्रकाश है। किन्तु हमें प्रकाशम सत्यको बँकना है। हम केवल साहित्यिक दुनिया-में नहीं वास्तविक जीवनमें रहते हैं। इस जगत्में रहते हैं। साहित्यपर आदरवतासे अधिक जटिलता रखना मूर्खता है।

अतस्तव यह है कि हमारी इतनी बड़ी विचलताएँ हैं कि हम व्यक्तित्व या चरित्रके वैज्ञानिक विस्लेषणपर सत-प्रतिपात बटोया नहीं गन सकते। हमें नहीं रखना चाहिए। फिर भी मनुष्यक पास वैज्ञानिक बुद्धि है, सत्य

मात्र भी है और इसका अनवरत प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है और जहाँ तक बने अपनेसे परे होकर इस प्रकारका वैज्ञानिक विस्लेषण चकरी भी है। और मनुष्य उसे करता भी है।

किन्तु यदि उसकी सीमाएँ समझ ली जायें तो हम अपने-सुख और अपने-सुखी सन्तुष्टाओंसे बच जाते हैं साथ ही आत्मरक्षा भी कर लेते हैं। और यदि तटस्थ निमल भावसे किया गया वैज्ञानिक विस्लेषण कभी से सत्यापन भी प्रकट करता है तो व्यक्तिपर हमारा अधिकार भी बढ़ जाता है। इसीलिए मेरा सुझाव है व्यक्तित्वका विस्लेषण दो प्रकारसे किया जाये। एक तो केवल विद्युत् आत्म-हितके भावसे दूसरे सुदम-ने-सुदम मनोवैज्ञानिक स्वार्थोंको हटाकर। यदि हम अपने जीवनकी एक उपग्याप्त समझ लें और हमारे जीवनमें आनेवाले लोगोंको केवल मात्र तो पदादा पुक्ति-मुक्त होया। और हमारा जीवन भी अधिक रस-मय हो जायेगा।

लेकिन यह सब मैं क्यों लिख रहा हूँ ? इसलिए कि आजकी जिन्दगी कुछ यों है कि उसमें एक दूसरेको लेकर बहुत खूब उमसा जाता है। जिन्दगी निष्ठा व्यक्तित्व-विस्लेषणमें बतसायो जाती है उतना ही बातावरण अधिक बढ़ जा हो जाता है। कपता है कि लोगोंका मिथ्या विस्लेषणकी आरत बढ़ गयी है। यह बौद्धिक व्यवहार अहंकारका एक बड़ा भारी विधा हो गया है। एसा क्यों ? मध्यवर्गीय लोगोंमें बैठे-ठालेका यह मवेशार रोम उन ठठपनेको बताता है जो उनके हृदयमें व्याप्त है। व आपसे हम प्रकारके विस्लेषणमें जितनी घनपोर आस्था प्रकट करते हैं उतनी ही अनास्था मनुष्यके विकासमें होती जाती है। मैं अपनी अनास्था-से शुरू होकर आत्मामें जा जाता हूँ व आस्थासे शुरू होकर अपन अज्ञान ही या आत्मज्ञान भी मात्र-शुद्ध अनात्मामें बिलीन होने लगते हैं। यह अच्छी बात नहीं है। इसलिए मैं अपने 'वैज्ञानिक परिच-विस्लेषण को केवल काम-बसाऊ कार्यकाठे मास्यताके रूपमें ही प्रहम करनेकी धार करता हूँ। क्या यह शक्य है ?

यदि यह सही है तो मैं अपने उपकारी मित्र और उनकी पत्नी महोदयाक प्रति क्या न उम्बुल रहूँ? बहर में उनकी बीबीका साबिक पत्राईया ।

लेकिन इस महिलाको साबिक पढ़ानकी याद आते ही मैं अपनी ही इस दाईरको मूल जाता हूँ कि उनके बारेमें जो येने राय बना रही है वह थिऊ नाम-बलाऊ कामकारी माग्यठा है । येरी घाँस फूटने स्याठी है - मानो मुझे अब बिन्दु परिस्परिका सामना करना पड़ रहा है । आत्रिर मैं अनुभवोंको कैसे लुटसाऊँ ? उनके बिना तो ज्ञान अतम्मभ है । इन्हीं अनुभवोंके हाथ ही मुझे दुनियाकी पहचान हाठी है । हाँ मैं यह मानता हूँ कि इस अनुभवसे ज्ञान प्राप्त करना या अज्ञान प्राप्त करना येरी योष्यठापर, मुख्यम उचित ज्ञान-उत्सर्पर ही निर्भर है । ज्ञानसे ही ज्ञान सिधता है । ज्ञानसे अज्ञातकी और जाया जाता है । ज्ञानसे ज्ञातकी और जाना - एक गोक-गोक बहुकमें घुमना हुना । इसीलिए मैं साबिक पढ़ानेक अनुभवक शोचन इन बातका ध्यान रखूँगा कि जाने बसकर मुझ इन व्यक्तित्वके बारेमें कौन-सा नया ज्ञान यानी अज्ञातका ज्ञान प्राप्त होया ।

लेकिन मुझ अज्ञातसे डर लगता है । मैं मानूम कौन-सा अज्ञात अब मया इस्तजार कर रहा है । और मैं यह माननेके लिए प्रयुत हूँ कि हर तरहके अज्ञातके प्रति आकर्षित होना बुद्धिमत्ता नहीं है । मैं इस दुनियामें पड़ा रहता हूँ कि मुझे इतहास होता है - इकहाके बदेर हम लोवोंका बक नहीं सकता । यह यह कि अपनी ज्ञानकी सीमाएँ और उसकी विषय ताएँ सबसो और इसीलिए जग्योंको सम्बेहका प्रपवा से । किन्तु साथ ही इन विषयताओंसे पर्याप्त होनेकी आवश्यकता नहीं । ज्ञानसे अज्ञातकी और जानेका नामकन बना डाको डरो नहीं । ज्ञानसे अज्ञातकी और जानने ही ज्ञानकी विषयताएँ हूटती रहेंगी बसकी घरहूँ हूटती रहेंगी लेकिन बित दिनसे ज्ञान केवल ज्ञानसे ज्ञातकी और जायेगे जब दिन आग

कैवल्य अपनी ही कीलपर अपने ही बाध-वास घूमते रहेंगे। यह मन्त्रा नहीं है। इसलिये आपको मन्त्रात्म्य करनेकी जरूरत नहीं। एक बार मन्त्रात्मके एक हिस्सेको ज्ञात बना लेनपर पहलका 'ज्ञात भी कुछ नया रूप धारण करेगा। उसको यह नया रूप धारण करने से उसकी इस क्रियामें बाधा मठ डालो।



नयेकी जन्म-कुम्हारडली एक

म एक ऐसे व्यक्तिको जानता हूँ जिस (समाजीक) में एक जमानेमें बहुत बुद्धिमान समझता था। मुझे उससे बहुत आचार्य भी कि वह जामे बचकर एक मंचाकी प्रतिभासाली पुरुष निकलया। छाप समझने से कि मैं उस व्यक्तिको अनुचित मज्ज दे रहा हूँ। मुझे ज्यता या कि वह व्यक्ति हमारे भारतीय परम्पराका ही एक विविध परिघाम है। वह अपने विचारोंको अधिक सम्मीरतापूर्वक भता। वे उसके लिए रूप और हवा-जैमे दबाभासिक प्राकृतिक एवम थे। धार इतसे भी अधिक। पर अमक उसके लिए न वे विचार ये न अनुमति। वे उसके मानसिक मूगोसके पहाड़ चट्टान घाह्यो जमीन नियाँ भरने बंयस और रैमिस्तान थे। मुझे यह भान होता छ्ता कि वह व्यक्ति जामेको प्रव करते समय स्वयंकी सभी इन्द्रिय-शक्तिसे काम सेते हुए एक भानसिक माना कर रहा है। वह अपने विचारों या भावोंको केवल प्रव ही नहीं करता या वह उन्हें रार्थ करता या सूँचता या उनका आकार प्रकार, रंग-रूप और मति बठा लकता या मानों उसके सामने वे प्रकट, साक्षात् और जीवन्त हों। उसका दिमाग सोहेका एक टिकंजा था या सुनारकी एक छोटो-ना चिमटी या बाँकेसे बाँके और बड़ीसे बड़ी बातकी सूख रूपसे और महबूतीसे पकड़कर सामने रस देती है।

लेकिन यह दाज पुतामी हा मनी। जब मुझे लपता है कि मैं भी बुद्धिमान हो गया हूँ। मुझे देता लपता कि मेरे दोस्तकी बुद्धिमत्ताका नाम उनकी बिगनी ही रगारा थी न कि केवल मसिन्दक-समुझोंकी हनकक।

एक माहिरिबकरी हाचरी

बारह बपों बाद जब एकाएक मेरा सबसे मुलाकात हुई तब जानस्य और आरबबका कोई ठिकाना न रहा। जानस्यसे भी बारादा आरबब। मरिमोंकी धारासँके बीच इतन बड़-बड़ पहाड़ आ बये थ कि उन्हाणे हमारि रिखाएँ भी बदल दी थी। जब फिरस मुलाकात हुई तो स्वभावत हमारय ध्यान इन पहाड़ोंकी सम्बाई बीड़ाई छँबाई-नीषाईपर गया। बारह थप बाद अब जो हम से हो गय है तां किस तरह ?

उसके बाल मुफेद हो गये थे। लेकिन यह कहना मुश्किल था कि वह नौबबाल नहीं है। यों कहिए कि वह मृतपूब नौबबाल था। मठलब यह कि प्रभाव उसके बतमान रंग-रूपका न होकर उसक मृतपूब रंगरूपका होता था। मुझे वह बसर अच्छा लगता। जो चाहता कि उसके बारेमें ऐमैष्टिक कल्पना की जाये। लेकिन यह कहना मुश्किल था कि उसकी कुब्रता उसके कपकी थी या उसके मायेपर पड़ी हुई रेसामोंकी। कम-स-कम मुझे तो ब कभीरें अच्छो लगतीं। लूबमुरत कागज सुन्दर तो होता ही है लेकिन यदि वह कोरा हुआ और उसमें कोई ममबबन मिले हुए न रहे तो सोन्दर्यमें रहस्य ही क्या रहा ? सोन्दर्यमें रहस्य न हो तो वह एक धूबमुरत बीपटा है।

सामन पीपलका कुन है। चाँदनीमें उसके पत्ते पमबमाते काँप रहे हैं। चाँदनी और उसमें बिजिल हुई छायाएँ हमारो मनोमोकको एक मयी दिया दे रही हैं। मुझे भासून था कि मेरे मित्रके लिए टीछे की बोड टू बेस्ट बिण्ड उठनी हो पूर है मिठना कि मेरे लिए स्वबभर स्ट बाँव माइनस बन। लेकिन इसके बाबजूब ये दूरियाँ हमारो पहचानी हुई थीं और घायर इसीलिए ब प्रिय भी थीं।

बड़-बड़ मुझ दूरियोंका भाग हाता है, तब मुझ अच्छा भी लगता है और कुन भी। अच्छा इसलिए कि दूरी हमारो गतिको एक कुनोती है। कुन इसलिए कि मित्रोंके बीच दूरी गटकती है। हम एक हो भापाका अपवोय ती करते हैं लेकिन समिमाच एक होठ हुए भी ध्वन्य और

व्यंग्याय अलग प्रत्यय हो जाते हैं। यह दूरीके कारण है। दूरीपर विजय
पाना मागव-स्वभाव है। वह एक साहस-रोमांस है। जब हमें एक-दूसरेको
फिरसे खोजना-पाना है।

एक तरहसे मुझे पुरी भी जो कि मैं उसे कतई मूल बना या जोर
उमड़े बहुत दूर निकल गया था। यावत् यह आवश्यक भी था। नहीं
ता मैं उससे बाण्डन हो जाता। मेरी अपनी दृष्टिसे वह असाधारण और
असामान्य था। एक असाधारणता और झूठा भी उसमें थी। निरवता
भी उसमें थी। वह अपनी एक पुन अपने एक विचार या एक कायपर
तबसे पहले कुरको और उसके साथ अपने लोगोंको डरवान कर सकता
था। इस भीषण त्यागके कारण उसके अपने भारतीयोंका उसके विरुद्ध
मुठ होता तो वह उसकी क्षति भी बरपास कर लेता। उसको जिन्यवी
के इस बुनियादी तत्त्वसे मैं हमेशा डर दिया। जब वह राजनीतिमें उतरा
तो मैंने उसके परबालोंके सामने गरजकर यह आरोप लगाया कि वह
उसका पलायन है अपना उत्तरदायित्व बहुत न करानको प्रवृत्ति है। मैंने
उससे वह भी कहा कि वह राजनीतिक व्यक्ति है ही नहीं। राजनीतिके
साथ जब वह साहित्यमें उतरा तब मुझे कुछ अच्छा लगा। लेकिन तब
तक उसकी हालत बिगड़ चुकी थी। बरके बिगोब और बाहरके विरोधसे
वह जबर हो गया था। लेकिन वह बड़ी बड़ी होकर तबब वह मड़ा रहा।
और तबसे हम एक-दूसरेसे दूर-दूर हाँसे चले गये।

लेकिन आज मैं यह सोचता हूँ कि सांसारिक समसौतेसे ज्यादा बिनायक
कोई चीज नहीं - जास ठीकर वही जहाँ किसी अच्छी महत्त्वपूर्ण बात
करनेके मामले में आप या अपने-बैसे लोग और पराये लोग बाँड़े जाते हों।
बिदनी खबरदार उनही बाबा होगी उतनी ही बड़ी सड़ाई भी होगी
जबबा उतना ही निम्नतम समसौता होगा।

इस भीषण गुंथपकी हृदय-भेदक प्रक्रियामेंसे गुजरकर उस अस्तिता
निम्न कुछ ऐंदा-बैंदा, कुछ बिचित्र व्यवस्था हो गया था। किन्तु तबसे बड़ी
एक साहित्यिककी बाब

बात यह थी कि उसकी भावू सही थी। इसलिए वह असामान्य था।

दूसरे शब्दों में मैं सामान्य उसको समझता हूँ जिसमें अपने भीतरके असामान्यके उच्च आदेशका पालन करनेका मनोबल न हो। मैं अपनेको ऐसा ही जानती समझता हूँ। मैं मात्र सामान्य हूँ - मैं लामो-गिरामी हूँ यह बात धमक है। और चूँकि वह व्यक्ति हमेशा मेरे भीतरके असामान्य को उकसा बैठा था इसीलिए अपने भीतरके उस उकसे हुए असामान्यकी शोषणोंमें मैं एक ओर स्वयंको हीन अनुभव करता तो दूसरी ओर वही असामान्य मेरी कल्पना और भावनाको उत्तेजित करके मुझे अपनेसे बड़त् और व्यापक भी है उसमें कुछो देता - चाहे वह इष्टीग्रम ईश्वरपुस्तक ही सुदूर मेम्बूका हो या कोई ऐतिहासिक काण्ड हो अथवा कोई दार्शनिक सिद्धान्त हो या बिनास सामाजिक लक्ष्य हो। इसलिए मैं अपने और अपने मित्रके अरिसे असामान्यके अन्तःचरित्र और सामान्यके दबावको मरुत भाँति जानता था।

लेकिन मेरी गति और बुद्धि कुछ और थी। जब मैं कोई काम करता तो इसलिए कि उससे लोभ हुआ होता है। वह काम करता तो सिर्फ इसलिए कि एक बार कोई काम हाथमें लेनेपर उस अविचारो ईयसे भली भाँति कर ही शक्यता चाहिए। मेरी व्यावहारिक सामान्य बुद्धि थी। उसकी जाय-नाकिल आत्म प्रबन्धीकरणकी एक निरन्तर टीसी। इस शोषणों दो प्रश्नोंका मेरु था। जिन्दगीमें मैं सफल हुआ वह असफल। प्रतिष्ठित मरु और मरुस्वी में कहनाया। वह नामकीन और आचारहीन रह गया। लेकिन अपनी इस हासिलकी उस कठई परबाह नहीं थी। इसका मुझे बहुत बुरा लगता क्योंकि बस्तुतः वह मरु मरुस्विताको भी बड़ी सत्ताके काम स्वकार न कर पाता।

इसमें वर्षों बाद मेरी जिन्दगीमें जब वह वापिस आया तो मुझे कया कि यह उल उल्ला-दिण्डकी भाँति है जो सँकड़ों वर्षोंके अचर्यापके बाद मूयके पाम आकर एक चक्कर लगा बैठा है, और पुनः अपने आजापमाण

पर निकल जाता है। इस मूर्ख यात्राके उसके अनुभवकी झीमट में जानता है। भले ही किन्हीं अप्रत्याशित संघर्षोंमें टूट-फूटकर वह घुल बनता हुआ सरसी पीस दूरके किसी औरे श्चाममें खी जाये।

किन्तु आज उसने मुझसे कहा कि उसकी पूरी जिन्दगी भूखका एक नमूना है। मैं उसके विषयको समझ गया। वह जिन्दगीमें छोटी-छोटी संकष्टोंमें आहता था। उसके पास तो सिर्फ एक मध्यम असफलता है। (यह मैरी टिप्पणी है, उसकी नहीं।) मैंने सिर्फ इतना ही जवाब दिया "लेकिन नमूना ही है! यहाँ तो न संकष्टका है, न सहीका नमूना!"

मैंने उसका दिल बँबानेकी कोसिष की। और मैं कर ही गया संकष्टा था। मनुष्यके लिए यह स्वभाविक ही है कि वह बोझी-बहुत सांसारिक संकष्टोंकी इच्छा रखे। किन्हीं असावधान क्षणोंमें ही उसने मुझसे कहा कि वह स्वयं भूखका एक नमूना है। करता वह ऐसा नहीं कहता। लेकिन आजका जमाना कैसा है जब कि बुद्धिमान भी यह चाहती है कि वह उम्कू क्यों न हुई।

बादमीमें एक बाहु होता है। लेकिन यह बाहु अलग-अलग लोगोंके लिए अलग-अलग है। न माकूम हमारी बात कहींके धुक हुई। मैं कर करकर उससे बात करता जा रहा था। कहीं ऐसा न हो कि जमे जाने बनजाने मुझमें कोई चोट पहुँचे। क्योंकि उसने अपने विचारोंके लिए पून बहामा है जिन्दगी कात्म की है। रसीकिए मैं पीरे-बीरे उसकी बात सुनता जा रहा था। और जहाँ नतमेर व्यक्त करना हो वहाँ मैं अपनी आरतके अनुसार उत्तेजित होनेके बजाय मुसकुरकर बात कह देता।

मैंने उससे पूछा "गिछने बीच क्योंनी सबसे महान् चटना कीज-सी है?"

एक मिनिट तक उसने मैरी तरफ देखा और फिर घूटते ही कहा --
संयुक्त परिवारका स्रास।

में स्तम्भ हो गया ।

उसीने मेरे कन्पेपर हाथ रखकर खिलखिलाते हुए कहा और हाथ

स्तम्भका साहित्यसे बहुत बड़ा सम्बन्ध है ।

बारों और चाँदनीकी रहस्यमय मधुरता फैली हुई थी । बारों और टण्डा एकान्त फैला हुआ था । मेरी अजीब मन-स्थिति हो गयी । मैं अपने पड़ोसियोंकी विन्दिनियाँ झूड़ने लगा अपने परिचितोंका जीवन तमासने लगा । एक अनिच्छित बेचैनी मुझमें फैल गयी । हाँ यह सही है कि शिन्दवी और जमाना बरसठा जा रहा था । किन्तु मैं परिवर्तनपर परिवर्तनको देखनेका भावी या परिवर्तनकी प्रक्रियाको नहीं ।

एक बात कहूँ — आजकलकी आबस्मकताओंके अनुसार मैं चिन कटा और मृत्यु-कमासे निकर मानव-बँधुताएँ तब सबको जानकारी रखता हूँ । इस सम्बन्धमें बहुतेरे विद्यार्थी तप्य मेरे दिलो-दिमागके सिध्दे पाकिटमें रते हुए हैं । इसलिये मुझसे कोई समादा गड़बड़ नहीं कर सकता । जब मेरे मित्रने एकरम संयुक्त परिवारकी बात कही तो मन उसका इस्तेहान लेमकी जिद करके उससे पूछा और इन बर्षोंमें सबसे बरी मूल कौन-सी हुई ?

एक निमिष्टके लिए वह चुन रहा फिर उसने बचाव लिया 'राज नीतिके पास समाज-सुधारका कोई कार्यक्रम न होना । साहित्यके पास सामाजिक-सुधारका कोई कार्यक्रम न होना । सबन सोचा कि हम जनरल (सामान्य) बातें करके सिध्द और एकमात्र राजनीतिक या साहित्यिक ब्रह्मरोलनके परिये बस्तुस्थितिमें परिवर्तन कर सकेँगे । छन्द सामाजिक सुधारका वाय केवल अग्रतय प्रमाणाँको लौंन लिया गया—

'देखते नहीं हो आबादीके बाद जातिवादका जय बर्षों हुआ — याव राजनीतिक संस्थाओंके भीतर ! बरिष्ठ-वैधे राष्ट्रीय संघटनोंके जन्म ।

बारम ही साहित्यमें भी गड़बड़ है—'

बदली जन्म-कुण्डली : एक

उसकी यह उक्ति मुझे बड़ी हास्यास्पद प्रतीत हुई। उसमें मुझे मूर्खताके विद्यालय दृश्य दिखायी देने लगे। उसने अपनी बातको खर-बिसी ठाम भी है - ऐसा मुझे लगा।

उसने अविश्वाससे मेरी बातोंकी तरफ देखा। घामय वह सहो है कि मैं बड़े बेवकूफ मान रहा हूँ।

उठमें और वह भी चाँदनी उठमें सामनेके समयके साइपर बैठे हुए कुछ कौए चौक पड़े। साबर किसी चिमगायकने वहाँ छपट्टा मारा हो। कुछ कौए उड़े पेड़के आसपास कुछ देर तक भँडराये और फिर किसी ढालपर जाकर बैठ गये।

लेकिन मेरा दिम तैद्यमें था। उसने कहा 'समाजमें बर्मे है श्रेणियाँ है। श्रेणियोंमें परिवार है। समाजकी एक बुनियादी इकाई परिवार भी है। समाजकी अच्छाई-बुराई परिवारके माध्यमसे व्यक्त होती है। मनुष्यके चरित्रका विकास परिवारमें होता है। बच्चे पकते हैं उन्हें सामूहिक शिक्षा मिलती है। वे अपनी घाटी अच्छाईयाँ-बुराईयाँ बहासि लेते हैं। हमारे साहित्य तथा राजनीतिके पास ऐसी कोई दृष्टि नहीं है जो परिवारको समूह हो'

एक मिनटके लिए वह चुप रहा और आगे बढ़ता गया

'समानके साथ संयुक्त सामन्ती परिवारका हास हुआ। विचारों और संस्कारोंके प्रति विद्रोह भी किया गया जो सामन्ती परिवारमें पाये जाते थे।

लेकिन उसके बाद क्या हुआ ? लड़के बाहर राजनीति या साहित्यके मैदानमें लेलते और घर जाकर बैठा ही सोचते या करते जो सोचा या किया जाता रहा। समाजमें बाहर पूँजो या मनकी लतासे विद्रोहकी बात की गयी लेकिन घरमें नहीं। वह घिबला और शौलके बाहरकी बात थी। अतन्त्र यह कि अन्ध्याप्युष व्यवस्थाको चुनौती घरमें नहीं। घरके बाहर ही गयी। परका संघर्ष जटिल था। उठमें भावनाओंकी टकरावट चर्हींके

होती थी जो अपने प्राणके अंस थे। इसीलिए न कबल उस सघपकी टाक दिया गया वरन् एक बर्बोर बंपका समझौता किया गया। यह हुआ। मैं कहता हूँ यह हुआ। मानो इसे।

मुझे स्या मानो वह मुझे गाली दे रहा है। एक ठप्पी लहर मरे पुरे शरीरमें शौङ गयी। फिर भी शौंक मुझे जगा कि उसकी बात अभी सपूरी ही है, इसलिए मैं चुप रहा। वह बोला -

‘इसलिए पुरान सामन्ती बचसेप बके मझेमें हमारे परिवारोंमें पडे हुए है! पुरानेके प्रति और नयेके प्रति इस प्रकार एक बहुत ममानक बर सरकारी बुद्धि अपनायी गयी है। इसीलिए सिर्फ एक समझता है। प्रश्न है वैज्ञानिक पद्धतिका अवलम्बन करके उत्तर खोज निकालनेकी न बस्ती है, न तबोयत है, न कुछ। मैं मध्यमवर्गीय शिक्षित परिवारोंकी बात कर रहा हूँ।

‘जो पुराना है अब वह लौटकर आ नहीं सकता। लेकिन नयेन पुणेका स्थान नहीं लिया। धम-भावना गयी लेकिन वैज्ञानिक बुद्धि नहीं आयी। धममें हमारे जीवनके प्रत्येक पक्षको अनुशासित किया वा। वैज्ञानिक मानवीय दृष्टान वैज्ञानिक मानवीय बुद्धिने धमका स्थान नहीं लिया। इसीलिए केवल हम अपनी अस्त्यप्रवृत्तियोंके यंत्रसे पालित हो उठे। उस व्यापक बचवतर सर्वतोमुखी मानवीय अनुशासनकी हार्दिक सिद्धि बिना हम ‘नया-नया’ बिस्सा तो उठे लेकिन वह ‘नया नया है - हम नहीं जान सके। क्यों? नया जीवन नये मान-मूष्य नया इनसान परिव्याप-हीन और निराधर हो गये। वे दुःख और व्यापक मानसिक सताके अनुशासनका रन पारण न कर सके! वे चारण न कर सक! वे धर्म और दयनका स्थान न ल सके।



नयेकी जन्म-कुम्हारली दो

बीचमें-से जामरीके पत्ते फट गये थे इसीलिए वह जपूरी मालूम हुई ।
कैफियत बात पूरी थी ।

—और इस पूरी बातका प्रतीक-रूप वह मित्र मेरे सामने अभी
भी बैठा हुआ है । उसका चेहरा बिचारोत्तेजनासे बरस और काल मालूम
होता है । उस गरम डीरेक इंसानकी ऊष्मा मूसरर छा जाती है । उसकी
बात ठीक है — इतनी ठीक कि वह मुझे लजलीक दे रही है । वह कह रहा
था कि पुराना गया लेकिन नया मूर्ति जाया गयेके नामपर जो कुछ जाया
वह पुरानेका बाधन प्रदण नहीं कर सका । जीवनका व्यापक अनुयायक
सत्य कर गया । और नया तो केवल भ्रूण है अभी उसके हाथ-पैर-नुंह
बननेके हैं विकसित होनेके हैं ।

मेरे सामने बैठा हुआ मित्र खुप है और एकटक मेरी ओर देख रहा
है । मरी पाह से रहा है । उसकी आंखोंने प्रतीत होता है जैसे उनको वह
विकास नहीं हो पा रहा है कि मैं उसकी बात समझ पा रहा हूँ मानो
मैं उसकी बातकी महारामि सतरजसे इनकार करवा हूँ । इसलिए वह
करवा गया—

ऐसा नहीं है कि नये मूर्तियोंका वैचारिक विकास न किया जा सके ।
या वे भ्रूणके भ्रूण ही बने रहेंगे ।

मैंने बीचम टोककर कहा — नहीं ऐसा तो नहीं है नये मूर्तय भी
हमारे सामने हैं और उनकी प्रेरणामे उन्हींके विचारके लिए संभव जो तो
किया जाया है —

मित्रने कहा कि सबसे पुरानी परम्पराको समाप्त करके नये मूर्खोंकी नयी परम्परा स्थापित करनेका है। पहले हम परम्पराके दास थे आज हमारी हास्य उससे भी खराब है, क्योंकि नयी परम्पराके अभावमें इन अन्तःप्रवृत्तियोंके दास हो गये हैं। इन अन्तःप्रवृत्तियोंका बाहे जितना आदर्शोक्तिमें किया जाये वे मात्र व्यक्तित्वमें है। और इस समय तो नये मूर्ख केवल बौद्धिक स्तरपर है। वे जीवनका अनुशासन क्या कर सकेंगे। यदि समाजकी संस्कृति मुख्यतः बौद्धिक संस्कृति होती वैज्ञानिक दृष्टि समाजकी प्रधान दृष्टि होती तो शायद यह सम्भव भी था। किन्तु ये नये मूर्ख कुछ ही सोचके अन्तःप्रवाहकी नासियाँ बन गये हैं। उन्हें कोई सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं है। न उस मान्यताके लिए श्वाङ्क संघर्ष का आयोजन किया गया। मुख्यतः व्यक्ति एक सोसलरिक्त दुग्धमें छूटा है - एक कस्बेमें बँधनेमें। फलतः कोई टी० ए० ईतिहासिक पास बाजा है तो कोई आन्तरिक टोएनबीके समीप तो कोई और किसी तरफ।

किन्तु समाज-मान्य कोई पूरा समय जीवन-दृष्टि नहीं मिल पाती जैसे पुराने घनों और दधानोंमें मिल जाती थी। तो फिर जीवनके व्यापक अनुशासनक सत्यकी प्राप्ति कैसे हो ?

- मध्य-युगीन परम्परा समस्त भले ही हो भले ही हम उसे सामग्री बहकर टाल दें, किन्तु उसका छाँटा ऐसा था कि व्यक्तिमें मानसिक शक्ति का अन्वय होनेकी सुझाव न थी। परम्पराकट पील और छिष्टवाने उसे मानसिक संकटोंसे बचा लिया था।

बहु मात्र प्रवृत्तिकी कठपुतली न था।

सेकिन आज परिवारमें बहु परम्परा इतनी बूढ़ तो है नहीं। सिद्ध समके अन्वय है। वे भी शून्य होते जा रहे हैं इसलिए कि मौजूदा वैज्ञानिक सम्प्रदायका प्रभाव पहुँचये पहुँच हो रहा है फिर भी इतना पहुँच नहीं है कि व्यक्ति नवीन दधानोंमें मुख्यतः जीवनमें समाज-मान्य नवीन दधानिक अनुशासन प्राप्त कर सके। हमने उस सामग्री इकारोंको

तोड़ दिया। या यूँ कहिए कि वह आप टूटती गयी। परम्परा ने हमारे स्नात और भोजन से लेकर स्वास्थ्य-रक्षा तककी ठेकेबाजी की थी।

परम्परागत चीजोंके आदरसे हमारे आत्म-तत्त्वको बिग्रगिस्त होनेसे बचा लिया था। हमने पुगने मूस्य तोड़ दिये। नये उपस्थित नहीं हुए। जो हुए, वे कुछ नहीं हो सके। वे समाजकी मान्यता बनकर गयी परम्परा का कायम करते हुए आचरणको मूस प्रेरणा विद्यमान और सींचा नहीं बन सके। वे अस्पष्ट रह गये। उनकी अस्पष्टता खूबमूरत ही गयी।

वह आये कहता गया "ऐसा क्यों हुआ? ऐसा इसलिए हुआ कि हमने अपन साक्षात् जीवनमें यानी परिवार और समाजमें सीतवै हुए पुरानेके प्रति और बातें हुए नयेके प्रति एक अचरबाबी दृष्टि अपनायी। यही इन दिनों कोई अमकर विद्रोह नहीं हुआ नयेकी सर्वांगीण स्थापनाका कोई अनुरोध भी नहीं रहा। इस संके समाजके बदलनेका काम साहित्यने या विचारधाराने भी नहीं किया। मार्क्सवाद या राजनीतिने सांस्कृतिक क्षेत्र सेमाला समाज बदलनेकी बात की। लेकिन केवल राजनीतिक प्लैट फॉर्मसे ही समाज नहीं बदला जाता—"

और तब मेरे निचने मेरी तरफ देखा कि मैं क्या सोच रहा हूँ। जब तब मेरी चाह सनेकी कोसिस करनेके बाद उचने कहा— बाहर राजनीति या साहित्यमें नवीन चीजन 'नये मानव-मूल्य की बात चलती है समाजबादी संके समाज रचनाकी बात चलती है लेकिन जहाँ तक की बात आयी— एम तौरपर परिवारमें मूस्योंकी स्थापनाकी बात आयी— कि बड़े विचारक कन्नी काट गये। मातृ घर समाजसे बाहर हो। मात्र भी हमारे परिवार अमानवी बट्टर-गन्धी विचारधारानेके पड़ है या बुज आ डिस्के सत्ताधारके दुग है— यह न मूस्य।

परिवारमें न बबक सामन्ती अचरौप है बरन् यहाँ भी बरबर तीन खेचियाँ रिप्रायी देती है। एक वह अनी है जो देता कमाकर लाती है उसे सबसे अधिक आबर ही नहीं दिया जाता बरन् उतकी मान्यता और

विचार उसको रुचि-अरुचि और काम साध ही सबके लिए मानव्यके रूपमें प्रस्तुत हो जाते हैं - चाहे वे कितन ही अर्थज्ञानिक अनुचित और स्वाभ-युक्त क्यों न हों। सबसे निचली श्रेणी उन लोगोंकी है कि जो चौकेमें पड़े हैं। बपर कहीं स्त्री निरक्षर हुई या निघन परिवारम-से आयी हुई रहीं तो वह और उसकी ऐसी स्थितिके व्यक्ति उस छोसरी श्रेणीमें ही रहते हैं। दूसरी श्रेणीमें बालक और कमाऊ व्यक्तिके वे रिश्तेदार हैं जो उससे कम कमाते हैं। यदि वे पयाश कमाते हैं तो वे प्रथम श्रेणीमें या उससे भी ऊपर होकर सबके लिए अनिचाय नियमक रूपमें यशोभाजन हा जाते हैं। इन सब सामारिक सफलता और उससे मिली हुई कौशिकी समादाही परिवारमें बितनी बकती है उतनी बाहर भी नहीं। मानवतावादकी हरदम दुहाई दते हुए भी घरमें बितना बड़ावार और व्यक्तिवाद तथा वैचारिक बासता बलती है उसकी कोई हर नहीं।

मजा यह है कि उसको स्वाभाविक मान लिया गया है। यह प्रवृत्ति बात है। स्वाभाविक है, इसलिए सही भी है। उसके प्रति बिरोह कुल-घोक संस्कार भरता और प्रतिपक्षके प्रति बगावत करार की बाहर उसे गुरम्त हो पणित माना जाता है। सास-बहूके क्षयदे या पिता-पुत्रके क्षयदे आदर्श प्रेरित है - यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु परिवारका नुगमक और व्यक्ति चरित्रका इतिहास जिस विद्याल परिस्थितिका निर्माण करते हैं उस परिस्थितिकी बाँच-बरण हाना बहुत बकती है। इस परिस्थितिके कारण परिवारका व्यक्ति बूमरेके लिए परिस्थितिका संग बन जाता है। व्यक्ति मानवीय ज्वलन्त हृदयके रूपमें प्रस्तुत न हाकर ग्णित-परिस्थितिके एक अंगके रूपमें अब प्रस्तुत होने लगता है तब परिवारके भीतर एक छोट पीदा होने लगती है। हम उस व्यक्तिको एक प्राणमय मानव ब्रताके रूपमें स्वीकार न कर, उस अपनी परिस्थितिका एक अंग मान उसका गुम-दाय विवचन करते लगते हैं चरित्र-वि-लेपय करम

संगते हैं इस बुद्धिसे कि उस ब्यक्तिको हमारी समझसे ओं करना चाहिए
 वह उसने नहीं किया --

परिवारमें पुराने सामन्ती संस्कार विचारोंके जमावा मौजूदा ब्यक्ति
 वाली धनवादी दुराग्रहोंके बाधाकरणके अस्तित्वके कारण घरमें हम
 पुँटने या बाँटे बानके बुरय इतने बिद्याल और अर्थक्षय हैं कि क्या कहना --
 ब्यक्तिके मुख बिकास और आत्मोन्नतिका साधन होनके बजाय जब
 परिवार एक कोठा हो जाता है तब माय उसे क्या कहिएगा ।।

माय कहते कि सब परिवार ऐसे नहीं हैं । मैं मानता हूँ । लेकिन
 सामन्ती विचारधाराके अस्तके बाद नवी विचारधारामें वह तेजस्विता
 बायी हो नहीं है जो बीबनके सभी पक्षोंको अपने मामिक अनुयायनमें रखे ।
 न केवल यह, ऐसी विचारधाराको विकसित करनेकी उसके बिकासके
 किए संपन्न करनेकी कोशिश ही नहीं की गयी है । असलमें नये और
 पुरानेके प्रति कुछ अक्षरबाह अपनाया गया है । इस सुबिधासूक्तक लक्ष्य
 होन अक्षरबाहके कारण ही साहित्यमें भी नयेको क्याकार देनेकी कोई
 उपाय नहीं है । 'नया-नया नया-नूतन नवीन मानव में केवल नवीन
 ही अक्षय है । असलमें इस नयेको अपनी हृष्टाके ऊपर छोड़ दिया गया
 है । इसलिए 'नया विस्फुक्त प्रवृत्ति-नूतक है ।

हो सफ़टा है मेरे कहनेमें अतिरंजना हो । किन्तु तत्वज्ञानमें जाकर
 हीन नयके सिर्फ बिबाहकी प्रोज हुई । नयी कविता नये बिबाहकी
 कविता है ।

मेरे विषये मेरे हाव ओड़े । निहनिहाइके धर्ममें कहा - धमा
 करना भाई लमा करना मेरे दोस्त । लेकिन क्या आपुनिक मात्र-बीब ही
 कात्री है ? सामन्ती विचार-धाराका स्थान कैनेके लिए क्या हय उस भाव
 बोधको मूल्य-बोध तक बढ़ाकर उसे एक बतानका रूप नहीं है सफ़टे -
 ऐसा बतान ओ नवी सामाजिक बरम्परा बनकर ब्यक्ति और समाजके
 औरनके सभी पक्षोंको अनुगाहित कर सके ? ध्यान रखिए कि यदि वह

सांभुनिक माव-बोव ऊँचा उठायो न या सका और उसके द्वारा व्यक्तिगत और सामाजिक कर्मनिष्ठासन न हो सका तो क्या होया ?

सम्बन्ध कर्ता सन्निवृत्त हो जायेगा । मूर्ति-अंशकी स्व-मूर्तिका सिर काट दिया जायेगा और उसकी छाती फोड़ दी जायेगी ।

भारतीय जीवनकी भोठरी मूर्तिका भावक साहित्यमें प्रतिबिम्ब हो या न हो उसको लक्षात् हो या न हो वह गति आपसे कभी काटकर निकल जायेगी । साहित्यमें सत्त्व अमूरा रह जायेगा क्योंकि वह जीवनमें अमूरा रहा । इसलिये मेरे लयात्मक भावकी सबसे बड़ी आवश्यकता है — पुरानके प्रति और नयेके प्रति अक्षरवादी दृष्टि छान्न की जाये । और 'नया क्या है उसका तत्व और रूप क्या है, यह निर्धारित किया जाये । जब यह प्रक्रिया जीवनमें, घरमें और परिवारमें शुरू होगी तभी वह साहित्यमें भी शुरू होगी । जीवन-मृत्यु और कलात्मक साहित्यिक मूल्यमें आद्यविकल सम्बन्ध है, यह न भूलना चाहिए । इन्हें विकसित करनेके लिये केवल साहस ही नहीं स्पष्ट दृष्टि, स्पष्ट लक्ष्य और स्पष्ट विचार-धाराके लिये अथिष्ठ आवश्यक है ।

मेने बबले हुए कहा कि प्रदममें ही अक्षर छिगा रहता है और ऐसे को लौम है जो बिद्रोह भी करते है किया है और कर रहे है ।

मेने एक सति सी, उसीस छोड़ी और सत्कृतिक रूपसे कहा — और तुम्हारी इस साधे बातका साहित्यसे क्या सम्बन्ध है ?

मेने मुमकुटानेकी कोशिस को ।

उसने कहा — साहित्यकी गतिविधिको देखिए तो पठा जायेगा । एक तो वह परके बाहरका साहित्य है । उसमें मूल मानव-सम्बन्धोंके चित्रणकी पुंजास्य ही कहाँ है ? आप तो माव प्रकट करते है ? मानव-सम्बन्ध नहीं !

मेने कहा — यह अतिप्रयोजित है । उसने पसटकर जबाब दिया — नहीं नहीं आप प्रकट कह रहे है ।

नवका अन्त तुम्हको दो

उमम मुमसे पूछ - परिवारके भीतर परिवर्तनकी प्रक्रिया हो रही है या नहीं ?

मैने कहा - हाँ ।

उसने पूछा - कौन कर रहा है ?

मैने कहा - वह तो ही नहीं है । नये विचार नये भाव ।

उसने कहा - क्या कौन-से ? और फिर वह चुप ही कहता गया -

क्या उन भावों और विचारोंके लिए कोई विशेष संघर्ष चल रहा है ? क्या

उस संघर्षका कोई सामाजिक मान्यता मिली है ? क्या उस संघर्षके पीछे

कई छिछोरे हैं या वह सिर्फ एक व्यक्तिबारी बिन्दु है या बहुते

बिस्फोट ? परिवारके भीतर वो कुछ चल रहा है - क्या वह प्रवाह-वर्धित

जैसा नहीं है ?

इसका सम्पूर्ण प्रभाव हमारे साहित्यपर है ।

परिवारमें हमारे सामने मानवीय आदर्श और मानवीय मूल्य होते हैं

या हाना चाहिए । उनके लिए संघर्ष किया जाता है अथवा उनका संरक्षण

किया जाता है । यदि परिवारमें ही यह प्रक्रिया चले तो जीवनमें तोरुस्यता

होगी । जो परिवारके मूल्य होंगे व जीवनमें होंगे ही और वे साहित्यमें

भी उतरेंगे । हाँ यह सही है कि साहित्यमें आकर उनकी रूप रेखा बदल

जायेगी किन्तु उनका लक्ष कैसे बदलेंगे ? जिन्दगीके जो रस हैं, जो रसिया

है, जो ऐंटीटुमुद्र है, वे साहित्यमें अवरुध प्रकट होंगे—

तब प्रश्न और संकाको आप उत्तरके सिद्धान्तपर नहीं बैठ सकते ।

हमारा परिवार यदि केवल व्यक्तिबारी आधारपर बना है, यदि केवल

बहुते ही प्रभाव है, तो उसमें संयुक्त सामंती परिवारसे भी ज्यादा

दुपारपी रहेंगे । तब बहाँ सिर्फ प्रश्न ही प्रश्न रहेंगे उत्तर नहीं ।

वे यहाँ पहले समाशोषा करना चाहता था । उसकी बातें बहुत बर्ती

तक मुझे बर्षित प्रतीत हुई ।

फिर भी मैने उसे छेड़ते हुए कहा - लेकिन साहित्यपर उसका क्या

प्रकार है ?

प्रकार साहित्यिककी बाबरी

प्रभाव है, यह मैं अभी तक नहीं समझ सका।

उत्तर कहा — विचारबाराका न होना, या बकिबवास और बभडाको ही विचारबारा मान केना, प्रस्नका ही उत्तरका स्वाग बेकर हाक छाड़ केना — हमारी मनीतम साहित्यिक प्रनृतिका एक छलन है। इससे क्या मूचित होला है ?

मने कहा — ऐमा ! उसने कहा — और नहीं तो क्या ? बाअ-कक हर प्रातविक प्रतिक्रिया एक विचारका रूप पारण कर लेती है।

किन्तु मनकी हर हरकत या प्रतिक्रिया विचार नहीं होती। प्रस्नमें ही बरि उत्तर समाया हुवा दीखता है तो वह कबल प्रनृति ही का दूसरा नाम है। नहीं तो प्रस्न ही के अक्य-अक्य उत्तर क्यों होते ? उत्तरके सिहासनपर धंकाको बैठानेका मतलब है, अपनी समस्यामें प्रस्न ही का बारपोंकरण करना समस्यामें कैसे रहनेका उदासीकरण करना। वास्तविक उत्तर शोज न पानेकी स्थितिका यह बारपोंकरण अनुचित है।

मने कुछ धीर होकर जबाब दिया — किन्तु जो उत्तर सामने धीर पडते हैं वे अपुठ अनुचित, खण्डित और बभ्याबहारिक हों तो ?

उत्तर जबाब दिया — तो शोधको महत्व हो ! केकिन उत्तरके सिहासनपर बरि धंकाको बैठाबोगे (यह कहनेकी बातें हैं वास्तविक जीवनमें कोई ऐसा नहीं करता) तो आपकी जो डिभाप्रस्त मन-स्थिति है उन्हीमें कैसे रहनेका आप एक जाल रच रहे हैं। यदि आप विचार कर रहे हैं तो विचारके मूकभूत अनुशासनके नियमोंमें रहो और शोधकी उच परतिके — जिस आप बैसातिक कहते हैं — अनुसार बल्लो।

बह कहता बला गया — मनकी उच्च प्रतिक्रिया ही बाअकक विचार कहलाती है। विचारको करनेकी कोई ऑब्जेक्टिव कसौटी नहीं है। कसौटी ही क्यों ? जकरत भी क्या है ? हम आरम-बाह्य निती भी उसके प्रति बिद्रोही हैं तो हमारी बुद्धि बिस्वास चाहती है, ठीक बिस्वास कर नहीं सकती। इसलिये वह बिस्वास या यद्वा

करेगी भी तो ऐसेमें जिसे बचप किसी कसौटीपर कसा नहीं जा सकता वही उसके लिए सुविभाजक है। सुविधा मात्रके जीवनका प्रधान नियम है। नैतिक और अनैतिक उचित और अनुचित संघर्ष और असंभवका निषेध करनेकी ताकत आपने व्यक्तिके परे किसी वैज्ञानिक पद्धति या तुलना-बन्धको नहीं सीपी वरन् अपनी अन्तरात्माको यानी भीतरि प्रवृत्तिको जो आपकी अपनी है।

आप यह माने बैठे हैं कि अन्तरात्मासे निकला हुआ बोध भाव या निर्णय उचित होना ही चाहिए, संघर्ष होना ही चाहिए !

लेकिन अगर मेरी या आपकी या जनकी अन्तरात्मा छोटी और तुच्छ हो तो ? संकुचित और छिछरी हो तो प्रतिभाशाली पुस्तकी आत्मा अरमन्त हीन भी हो सकती है। इस अन्तरात्मासे निकले हुए बोध-बचन या निषेध हमेशा अचित्त एवाचना करेंगे ही यह आवश्यक नहीं है।

उसने कहा - अन्तरात्मा बाला क्त प्रवृत्तिमूक और अमूर्त किसी भी प्रकारके विश्वास और श्रद्धाका विरोधी है। कहनेके लिए भले ही हम 'विश्वास-वस्तुत्व'की बात करें या 'मानवता' या 'दायित्व'की बात करें - ये सब बातें अल्प हैं। इनका कोई आकार नहीं है अथवा दूसरे शब्दोंमें जिसको जो समझमें आवे वही उसकी 'समझ'में आया है इसलिए वह उचित भी है ! प्रश्नके अन्तर ही जो जोय उत्तर देनाते हैं वे उत्तरको अपने इच्छापर निर्भर रखते हैं। इसमें कोई शोध-बुद्धि या वैज्ञानिक आधार नहीं है। यदि वैसा होता तो शोधका वैज्ञानिक आधारवाय भी साहित्यमें होता। वह भी अज्ण ही था।

लेकिन क्या वस्तुतः यह भी है ?

येरा उत्तर है कि येरा बोस्त बिलकुल बहक गया है। लेकिन पशुनी बात तो यह है कि यह बहक बहक होकर भी वय मूर्खवान् नहीं हो पायी। मैंने अपने मनस उसके बहुतेरे ठक और विचार जारके सामने रा

रिचे । वे सरोय एकांगी और अनुचित भी हो सकते हैं । शायद हीं भी ।
लेकिन क्या उनकी एक बार क्षीण कर समा सकती नहीं है ?

बादनी मस्त पीछी हुई है । और मेरा मित्र एक बौद्धिक मूढ-बाबासे
मेरे पीछ-पीछे चल रहा है । मे बनेला बड़ा का रहा हूँ अपने सवासोमि
हुवा हुआ ।



वीरकर

पहरसे बरा दूर घामके बरत में और भरे मिन धी वीरकर गोपाल-
मन्दिरके इस छोटे-से बकुतरेपर बैठे हुए हैं। पता नहीं क्यों किन्हीं-किन्हीं
मन्त्रिपोंका बातावरण मुझे बहुत अच्छा लगता है। छाऊ कह दूँ कि ये
ईश्वर कीस्तरमें कोई विश्वास नहीं। फिर भी किन्हीं-किन्हीं बातावरणोंमें
हमेशाके लिए सीन हो जानेका भी करता है। छोटा-सा मन्दिर है। चारों
ओर कुम्भ पारिजात टगर और कन्हेर और चम्पाके पेड़ लगे हुए हैं जो
जंगली मासूम होते हैं, क्योंकि कोई जग बुर्योकी बेलभास नहीं करता।
एक निजम पुष्प-पावन बातावरण है जिसमें घामके रंग भीम गये हैं।
जमी अकेलापन है। घायल उह-सात बने छोयोका आगमन शुरू हो।

'घाम दुपहरको 'सा देकर रातमें सीन हो जाती है और रात भी
पुबहमें पलित हो जाती है। यह पत्र बला आया है, बला बलता है।
दनको प्रगति नहीं कहते।

वीरकरने इतना कहकर मरी लख इस तरह देता मानो वह कोई
अप्यक्त वम्भार तरम कह रहा हो। उसकी बातमें कोई लख (लख) हो
या न हा मुझे वह धारपी पलन है। इसलिए उसकी बात मुझे एकरम
निस्कार भासूम नहीं हो सकती। मैंने यज्ञालु छायावादी मनीषितले उसके
बकनभ्यने बर्ष देखनेकी सोचनेकी, टोह केनेकी कोछिय की। ऐतिहासिक
प्रपल करनेपर भी कुछ हास न आया। इसके बकनभ्यका अभिचार्य तो
एह ही गुम्बज है, यह मैंने बहुत-ही क्रिया और भीतर-ही भीतर इत

बातची कोसिदा करने लगा कि मैं उसे मूल न समझूँ ।

बीरकर कहता गया — उसको प्रमति नहीं कहते । मेरे अपालने वह प्रति भी नहीं है ।

यैने बड़ताकर एक ब्याप्री दी और उससे स्पष्टाकरण माँगा ।

उसने बहुत धीरे-धीरे कहना शुरू किया मानो उसकी साँस उखड़ गयी हो और बड़े प्रयाससे शब्दोंको जोड़कर वाक्य बना रहा हो । आपन बनी कहा या कि हमारे काव्य साहित्य या कलामें साइकला कॅन्सेप्ट (जीवनके तन्व) बहुत कम है । "मेरा विचार है कि आर्यकी प्रायः किञ्चित् यह नहीं है कि साहित्यमें तन्व कम है, बल्कि यह है कि जीवनमें तन्व अधिक है । वह जीवन जो त्रिषा या भोगा जाता है, उसमें इतने अधिक तन्व है—सुबहुत लेकर घाम तक मनपर उन तन्वोंका इतना अधिक संवेदान्मक प्रहार होता रहता है कि उत्तेजित हाँ-हाकर मस्तिष्ककी रंगें धमिलानके तन्व जान भावमके लिए उन तन्वोंको टाक देते हैं मूख बननेकी कोसिदा करते हैं और मन जान-भूलकर अपनेमें मूयका निर्माण कर लेता है ।"

मुझे हतप्रस हो जाना चाहिए था । किन्तु मैं मात्र हठबुद्धि होकर उसकी तरफ़ देखने लगा । मैंने उसीकी बातची निवारणकर रहना चाहा । मैंने कहा "शायद आप यह कहना चाहते हैं कि आर्यके सचेत संवेदन फोक कलाकारकी समस्या यह नहीं है बल्कि यह कि वह बहुत अधिक है और वह सुबहुत लेकर घाम तक लगातार इच्छित होता रहता है, कि उस कॅन्सेप्टका प्रारंभ तिरिगण (उन तन्वोंका यथावायव संकलन-संबन्धन) नहीं हो पाता । क्या मात्र यह कहना चाहते हैं ?"

— देयर यू आर (हाँ पकड़व सही) । बीरकरने उम्प्राहित होकर ब्याप दिवा और जाँच जोड़ा "लेखकके मनमें लगातार एवजित होने जानेवाले इन तन्वोंका इतना बीस होता है और दिखरने या गमन उसे इतना कम अवसात दिया है कि अनेक कलात्मक नमूनोंमें उसकी

पुनरचना हो नहीं पाती। इसके फलस्वरूप वे तत्व धर नहीं जाते बल्कि घाटण्ड बने जाते हैं। अथवा यों कह लीजिए कि केवल अपने हृदय-भंग को बधिर करनेके लिए अपने मनमें किसी सुगन्धकाम निर्माण कर देता है और वह स्वयं भी उठमें छो जाता है। मैं यह समझता हूँ कि केवलकफो मात्र इन स्थितिसे उबरनेकी आवश्यकता है।

बीरकरने यह आशात सापर मुझोपर किया था अथवा उतकी व्यक्तिगत अपनी कोई विशेष पार्व भूमि हो सकती है। मैं यह आशाता चाहता हूँ कि आशिर उसके मनमें बना है।

बीरकर एक मसौसे करका आदमी है। हार्ड स्कूलका मामूली टीचर है। साधारण परिस्थिति है। पढ़न-लिखनेका शौक है। काफ़ी बुद्धिमान है। उसने सम्बन्धी-सम्बन्धी पाठार्थ भी की है। आदमी रितचर्य है। सबसे बड़ा गुण यह है कि वह मेरा दोस्त है।

मुझे क्या कि उसकी बातमें कुछ धार है। इसीलिए बात बझते हुए मैंने उससे कहा 'किन्तिम इन बीरकर-उत्सोही अनेक नमूनोंमें पुनरचना आशिर वह क्यों नहीं कर पाता ? वह उनकी उपेक्षा क्यों करता है ? मेरे लयालसे वह अपने भोजन मनके वस्तु-उत्सोधि भाव रहा है अथवा उसमें इतनी प्रतिभा नहीं है कि वह सबको उचित रूपसे प्रस्तुत कर सके !'

बीरकर हँसा और मेरी तरफ़ देखते हुए कहा 'इसका अभाव आज तुब है सबसे है। लेकिन वह निस्सन्देह है कि अलय-अलग केवलक अलग अलग बनाव देंगे। बहुत-से केवलकोंमें प्रतिभाता अभाव किसीमें उरसाहका अभाव पता नहीं बना-बना।

बीरकरने मुझे एक सटपैमें अन्तमुख कर दिया और मैं यह सोचने लगा कि आशिर इन समस्याता का रंग क्या है और उसका मुझसे जो सम्बन्ध है उसका स्वरूप क्या है।

माशिरके अन्तरेपर धामको नीले बुँधलकेमें आशिरके बुँधोके कुँठों और पतियौकी मुगल्य था रही थी। अभी उतके आठ भी नहीं बने थे।

न केवल बृद्ध और अचेष्ट स्त्रियाँ बरगुं छात्रकियाँ और नवयुवक मन्दिरमें आते हुए ही से गर्भलिंगराममें स्थित देवतापर फूल फेंकते और हाथ जोड़कर व मातृम क्या-क्या बुझबुझते हुए लक्ष्म-भर प्रायना-मान हो जाते । सहरकी पढ़बढ़ते हुए यह मन्दिर रातके साढ़े नौ बजे तक इसी तरह व्यस्त रहता । साधारणतः मन्दिर जानेवाली इन नवयुवतियों और नवयुवकोंकी इस प्राचिनोग्मुख भावनापर मैं हँसा करता । लेकिन पता नहीं क्यों आज मैंने स्मय नहीं किया । मैं चुप रहा ।

इन युवक-युवतियोंको देख न जाने क्यों मैंने भरे हुए मल्लेसे बीरकरसे विर्क इतना ही कहा "परिस्थितिसे सामंजस्यके लिए यह जो आजीवन संभव है उसमें कितनी मनोवैज्ञानिक क्षमिता सब हो जाती है । पञ्चीस साल तकके जीवनमें सब व्यक्तिकी मानसिक शक्ति निर्माणशील प्रयत्नोंमें काली जाइए वह कैसे बेहूबा युद्धमें व्यय हो जाती है ।

बीरकर तुर अपनमें डूबा-डूबा-सा लग रहा था । उसने कहा "केसके स्वभावम बहुत-सा आश्चर्यकार रहता है या कहिए आदधबारी फिर रहती है । हम यह करेंगे यह छुटई नहीं करेंगे । किन्तु समाज या समय लेखकको या श्रम्यको ऐसा विकल्प देता कब है ? सप्तविकी तिमजिमी इमारतमें घुसकर ऊपर तक जानेके लिए सिद्ध एक ही जीना है, वह भी पारकरबार । उसपर बहुत मोड़ है । बड़ी टेनमठेक है । केतक कहता है, मैं उसके माय पड़ा रहूँगा उसके साथ नहीं । लेकिन परिस्थितिने उसको यह विकल्प दिया ही कहा है ? वह परिस्थितिसे बबरदस्ती यह विकल्प लेना चाहता है । हमका परिवाम यह होता है कि टेसमठेक काली हुई भीड़के नीचे वह कुचका जाता है या इस इमारतके बाहर उसको एकदम निरतक जाना पड़ता है या वह टक दिया जाता है और साधारणतः ऐसे कोय अपनी बय-भेगीसे गिरे हुए होते हैं । बय-भेगीसे गिरे हुएकी मन-स्थिति हमेंया पताब रहती है ।"

मैंने कहा 'हो अपने बर्नकी भारतें संस्कार माननाएँ कहाँ जायेंगी?'

उसने कहा कि मैं उन्हें अपनी बम-बोम्बोसे गिरे हुए ही रहना पड़ता है। बूँक बहुत उनकी सीपोंसे लुङ्ककर गिरे हुए हैं इसलिए वह बम-बोम्बो उनका तिरस्कार करती हैं। मनुष्यपर म्याय-निर्जय देनेका उसका मानवत्व व्यवहारवत् उसी बर्गका होता है। मेरी हास्य देखो न ! मेरी घोरबानी पटी हुई है इसलिए वे मुझपर दया करते हैं, कि मैं अयोग्य निकला कि मैं अनुत्तरदायी हूँ। अनुत्तरदायी कौन मैं वा वह ? मेरे नाते-रिश्तेदार सब उठी बोम्बोके हैं। इससे हुआ तिरस्कार, धातुबताका विषय तो बनना ही पड़ता है।

बीरकरने कुछ-मही हँसी हँसते हुए कहा मगर मैं उन्नतिके उब चीनपर बढ़नेके लिए ठेकमठेक करन लूँ तो सायर में भी सफल हो सकता हूँ। लेकिन ऐसी सफलता किस नामकी जिसे प्राप्त करनेके लिए आदमीको आत्म-गौरव छोना पड़े अनुत्तरदाये नामपर बरमाओ करना पड़े आधीनताके नामपर बिल्कुल एकदम सख्त झूठी युष्मानवी बातें करनी पड़ें। जिन व्यक्तियोंको आप दाय-अर टॉकरेट (घहन) नहीं कर सकते उनके बन्धारका उदस्य बनना पड़े। मैं जो सोच यह सब कर लेते हैं वे अपनी पक्षोपताकार्य पदुराते हुए मरमें लौटते हैं और कितने आत्म विन्वासने बाण करते हैं। मानो उन्हींका राज्य है। बहुकालिया सायर बुलना ही गया है लेकिन उसकी कला इन दिनों अत्यन्त परिष्कृत होकर मजक उठी है।

बीरकर बहटा गया अब बताइए, हम सचियोंपर क्या-क्या नहीं पुजती। जिस बातसे हम बिदे हैं वह क्या हमें छोड़ करफोमें भी अनुष्ठ नहीं रहने देता। वह हमारे पोछे पड़ा रहता है। अब बताइए, उसे कैसे ताफ्मारें ! उसका मानदण्डोंकी वृत्तिके लिए (गन्धी पाली देकर बोरकरने कहा था, मैं यहाँ मैं पालाका उपयोच कर रहा हूँ) हम अपनी ऐनी-वैसी कपाने फिरें ! अभी क्या बजाऊँ इसन अब विनयत्म-सोसाइटी सोनी तो हमें अजीबो-अजीब परिस्थितिका सामना करना पड़ा। धेर !"

एक साहित्यिकी बाधरी

मैंने कहा "बताइए, बताइए !

बीरकरने जबाब दिया "जिन सड़कियोंको मामूली पोर्ट्रेटपिण्डिका ब-ब-स नहीं जाता ---"खैर छोड़िए वह डिस्टा ! जब हम उस सोसाइटी का वार्षिक सम्मेलन करने लगे तब मैं एक मिनिस्टरको बुलवा लाया । साहब हमारे कोब फिशन लुस ! मेरे पिताजीको लया मेरा लड़का अब टीक रास्तेपर बा रहा है । अभी आपसे क्या कहूँ मिनिस्टरक बैंगलेपर मेरे एक परिचित बैठे हुए थे । वह एक नेताका लड़का था । मिनिस्टरको पीठ छिले ही फुमसे कहता क्या है 'हमारे पिताजीका प्लेटफॉर्म रिज्नाइए न ? जो ही जनतामें उनको प्लैटफॉर्म नहीं निक पाता इनीतिअ वे आबकस भूदान-आन्दोलनमें काम कर रहे हैं । मैंने अपनी समितिके वार्षिकोत्सवकी अन्तिम समाका उन्हें अभ्यश बना दिया" सो हा ! मेरे लोमोंको क्या खुशी हुई ! अबतक मैं निकम्मा ही नहीं जपोस्य था ! लेकिन मेरी पहुँच अनतक देख मेरी इरजत फिठनी बढ़ा । यह अब बिस्कुल सम्भव है कि उनके परिवे मर बहुल-से काम निकल जायें । लेकिन वे लोम --- फिशन बदमाश फिठने गय !

मैंने बीरकरसे कहा 'तुम अपने मुँहसे भटक गये हो ।

उसने कहा "बिस्कुल नहीं"---"हमारा केन्द्रक अपनी भौतिक सांसा रिक उप्रतिष्ठ किए दग्द-कन्द करता रहे या स्वयं अपनी विद्यामें प्रगतिक किए वह कोशिश करे ! अगर उसने पहली बात छोड़कर दूसरी बात की तो उसके पीछे कुछ समय जाने है --- भूत्रके अपनीयताके अपमानक समाजके रोगके महातरक कि मृत्युक । यदि दूसरी बात छाड़ पहली बात की ता उसका मूल मन विण्ड ही मज्ज हा क्या समझिए । यदि उसने शानों बाने एक छाप करना चाही तो वह इन दो बाइोंपर एक माय गवारी करी कर सकता उसकी स्थिति न बैबल उपहासास्पद हो जायगी बरन् वह पहले इरजेश बदमाश भी बन जायेगा । ऐन वर् उदाहरण मैं अभी के-अभी दे सक्ता हूँ । कहा तो नाम हूँ । बोलो हूँ ?

मैंने बीरकरसे कहा मेरा तो मिर दुल रहा है ।

तप्यासे बनाव मिला 'तप्यासे क्यों की चुपते हो ? उस बपके बाओबक गुम-जैकों कहते हैं कि तुम बीम्सबपोर' हो । ओ निस्तते हो उसका टीक-टीक अब समझमें नहीं जाता । या प्रक्री हो प्रक्री हो । मसस-में तुम्हारी दुनिया ही बलम है । तुम्हारे बिन्दुस (मचित) ही बलम है । तुम्हारा बागाबरण ही बलम है । तुम्हारी प्रेरणा ही मिस है । वह मसा उनके लिए अनुकूल क्यों होयी ? वह उन्हें समझमें कैसे आ सकती है ? क्यों वह उगह सुन्दर क्या समेयी ?

मैंने बीरकरका डाँटकर कहा 'लेकिन तुम्हारी इस बातसे इस तप्याका क्या सम्बन्ध कि हमारी धेनीके सेसकके पास साहित्यसे सम्बन्धित संबेदनात्मक जीवन-तार बहुत अधिक है, किन्तु वह उन्हें मण्डर पाठ्य कर देता है । और वह कृत्रिम रूपसे मनमें एक गुम्य बना भता है ।

बीरकरम कहा 'जलो उठो तुम बेबबूक हो' पर जलो डेर हो पयो' बजी वह बहुते हर्द नयी-नयी सहरोंमें डूबा रहता है पानी बीजोंमें समा जाता है वह बीजों में बकर सीरता है । लेकिन पानीके बाहर मिर निकालकर जलका मील-बिस्तार-रूप नहीं देय पाता । इन तस्वीरोंके अनेक नमूनोंमें पुनर्चना करमके लिए, बहुत गहरी बिन्दन-यक्ति चाहिए । उन इसकी प्रसस ही नहीं है । और प्रसस यह है भी तो बहुत पाड़ी-सी ।

मैं चुप रहा । मुस लया कि वह काओ हर तक सही कह रहा पा । अब मुसे ही देगिए न ! विम भर मैं जिस दुनियामें प्रवेश करता हूँ उसे यहि देगा जसे तो वह स्वप्न-कथाका ही एक रूप है ! वह एक बिप्राक जग्याम है । वह एक बिम-कथा है । उसमें कितने ही मनोहर और सुकुमार अर्थकर तथा बिगाररूप रूप है । मगर मैं अपनी तात्कालिक जीवन-गाथाके प्रसंग उठाकर बिकरूँ तो भी बहुत-बुछ हो सकता है । लेकिन क्या मैं एसा करता हूँ ? नहीं । वास्तविक जीवन जीते समय

एक साहित्यिककी बायी

संबंधनात्मक अनुभव करना और साथ ही ठीक उसी अनुभवके कल्पना-चित्र प्रदर्शित करना — वे शर्तों काय एकदम एक-साथ नहीं हो सकते । उसके बिना मुझे घर जाकर अपनेमें विलीन होना पड़ेगा । इसीलिए मैं कियरी (मित्रान्त) बनाकर रही हूँ चाहे वह किसीको पसन्द हो या न हो कि इन संबंधनात्मक तर्कों या सार्थकों अण्डर-ग्राउण्ड (भूमिगत) हो जाना बुरा नहीं है ।

मैंन यही बात अपने प्यारे मित्र बीरकरका बतायी । उसका विरलेपन मग्न पसन्द आया इसलिए मैं उसे यहाँ दे रहा हूँ ।

उसने बताया कि अनुभव-संबंधन और अनुभव प्रश्रयण दोनों साथ साथ नहीं चलते, यह एकरस नहीं है । किन्तु जिस व्यक्तिका मन मूलतः क्रिटिक (मजबूतीक) और कल्पना-प्रवण है वह टेबिलपर लिखते बहान कल्पना-प्रवण होता है यह बात नहीं । उसकी मर्मनशील कल्पना प्रणवना वस्तुतः रिक्त-भर खली खलती है । मग्न तो यह है कि वह उसके जीवनका एक क्षण है । जीवनका पर्म होत हुए भी वह उस क्षणका यथायोग्य पालन नहीं करता पालन करनेकी कोशिश भी नहीं करता । उदाहरणके लिए, उसे किसी विषयपर गम्भीरकीय लिपिना है । तुम पत्रकार हो । गम्भीरकीय लिपिना बहुत एकदम उस व्यक्तिका ध्यान जाता है इस बात पर, कि वह जो कुछ लिपिना चाहता है उसमें कई जगह सत्यकी शक्ति दृष्ट की है । उनको कल्पनामें एक इमेज ज्ञाय होता है (एक चित्र उभरता है) एक व्यक्ति यावताका एक चित्रगीका अपने जीवनका दुःख बीगता है कि वह दिनकी सुटारिमें जी रहा है । वह प केवल एक मूठ निर्माय कर रहा है करता जा रहा है । जगमें एक इवण पमर्निलिनी एक शिल्प है । बीरकरने मुझे चुनौती देते हुए कहा क्या तुमम इस इवण पमर्निलिनीके जीवन-दुःख प्रस्तुत विधे ? ” जगने आगे कहा ‘क्यों नहीं विधे ? तुमने जाने क्षणका पालन क्यों नहीं किया ?

बीरकर, पता नहीं क्यों बहुत उत्तेजित हो उठा । वह गड़बड़ा रहा

का गरज रहा था। उसने मुझपर जब इस प्रकार आक्रमण किया तो मेरा हृत्बुद्धि ही जाना स्वामाधिक था। मैं क्रुद्ध हो पड़ा।

जब घटने मेरी भ्रंश देखी और तमतमाया बेहुरा देखा तो वह हँस पड़ा। और बोला यह मेरे प्रणका जबाब नहीं हुआ। 'इबन पसनीकिटी इस घटने तुम्हें आपत्ति है यह ठीक है। तुम्हारी आपत्ति साधार है। तुम अच्छे आदमी हो इसीलिए मेरे दोस्त हो। माओ, बाप पी लो।

मैन कहा 'मुझे बाप-बाप नहीं पौनी। तुम निकम्मे आदमी हो। जसम मुझे शास्त करते हुए कहा कि 'निबधता-पूषक ही क्यों न सही तुम्हें इबस पसनीकिटी न सही इबस स्टेइड रकमा ही पड़ता है। मुझको भी रपना पड़ता है। तुम्हारी बुद्धि एक पष्य-वस्तु है - एक 'कमोडिटी है। तुम बुद्धि बेचते हो मैं भी बीसा ही करता हूँ। यह मैं जानता हूँ कि जीवन प्रदान है। जीवन न रहा तो कला कैसी। साहित्य कैसा। लेकिन साधो ता कि जिन अनुभव-संवरनमें तुम समातार छोन रहते हो यदि उस संवरनका तुम प्रकट न करोग, तुम न बताओगे तो किसको क्या पड़ी है कि वह बताये! अपने अनुभवोंका तुम सितानिक्सेस (महत्त्व) पड़वाना। सामाजिक बुद्धिमें तुम्हारा स्थान कुछ नहीं इसलिये तुम अपनेको हेग का छाटा मत्त समझो। तुम मात्र एक संवरनपीत माध्यम हा। अपने अपने ही ईमानदार अनुभव-संवरनोंका तथा अपने जीवनक स्वाधी भावोंको प्राँपर पमोकिटव (सही परिप्रेक्ष्य) में पड़वानो।

बीरकरनी आवाज इतनी मनी-मनी हो रही थी कि मुझे सजा कि वह किसी भावनाम वह रहा है। मुझ एकदम न जाने क्या उत्तेजना हुई। मैंने रगतपूषक उमक कपड़ेको जोरसे हिला दिया। उसन अन्तमें इगना बढ़ा इन अनुभव-संवरनोंको संभोकर रगना उनसे सम्बन्धित जीवन प्रमत्त और मानव-हृदय समेटकर रतना उन्हें मोटबुर्कमें टोक सिना करा जरूरी नहीं है? रचयनी आन्तरिक रूपसे सम्पन्न करनेका यह एक साहित्यिककी आदर्श

की एक छपेडा है - क्या ऐसी बात नहीं है ?”

बीरकरजी बिन यद्यपि प्रशाङ्गनायकता का शक्ति मग्न उग्रक सेना व बीरकरजी नहीं थीं। मेरी गलामें बलता-दृष्टता माध्याग्य बीरकर उदयन जोय व्यक्त है। यह कोई और है जिसमें मानव-विज्ञान-व्यय देवताका अनुभव सामर्थ्य है। यह एक महापुरुष है जो विश्व-स्वप्न दग्धता है।

मैं आपसे तो क्या। हम धीरे-धीरे बक्य-मक्य बक्य मग। मैं मगमें दुःखाने लगा - मक्यमक्य साहित्यमक्य सम्बन्धित जीवन-मक्य बक्य ही बक्य है। क्यातार हीनबाल विचित्र अनुभव-मक्यमक्य गक्यम माय न सुदी तो भी कक्य-कक्यम कक्यी-न-कक्यी तरह कक्यी-न-कक्यी बाह्य निमग ही नहीं अनुभव-मक्यमक्य भी बक्यता रहता है, मक्यम मक्यके माक्यमक्य कक्यता-मक्यमक्य। इन छप्यसे कक्ये इनकार कक्यता था। मक्यम कक्यम तरह कक्यने बीरकरने यह बात प्रस्तुत नहीं की थी। मक्यम ही बक्यता-मक्यमक्य इन अनुभव-मक्यमक्यके मक्यी-सही कक्यमक्य विचित्र प्रस्तुत कक्यमक्य मक्य, न कक्यम मक्यमक्य मक्यम बीर इनके मक्यमक्य-मक्यमक्यकी माक्यमक्यता है, बक्य इसक बहुते-बहुते पक्यने विचित्र-दृष्टिही माक्यमक्यता है। इन दृष्टिके मक्यमक्यमें मक्यम ही अनुभवके ठीक-ठीक मक्यमक्य ही मक्यम नहीं पक्ये और इसलिये कक्यक कुछ विचित्र अनुभवों या अनुभवामक्यीका ही तरकीब देकर मक्यम महात्म्यम अनुभवकाता गया पक्ये रह है। क्या यह मक्य नहीं है ? मक्ये गुणमक्यम यह एक छप्य है। इन कक्यता मक्यीका मक्य होगा है कि बहुत बार हमारा माहित्यिक विज्ञान बिन दिगामें जीना जामा बाक्यमक्य नहीं हो पाता। हम जो अनुभव माहित्यिक प्रक्येकक्यमक्य मक्य, प्रक्येकक्यम क्युन कक्ये है उनकी हमें बाक्यमें माक्यम पक्य जाती है। उनक विचित्र-मक्यमक्यता मक्यमक्य ही मक्यमके बाक्यम हम कक्यम उनक ही प्रक्ये कक्यने रहने है। मक्य अनुभव मक्यमक्य गक्यमक्य ही मक्यता तथा प्रमाक्यमक्यमक्यके बाक्यमक्य मक्यके मक्यमक्यमें पक्ये रहने है। मक्ये ही कक्यी-कक्यी उनकी मक्यमक्य हमारे द्वारा विचित्र माहित्यमें मक्यी माय। इसका क्युन विचित्र परिचाम यह

बीरकर

होता है हम यह नहीं रखते कि हमारे द्वारा निमित्त साहित्य समारंभ तो जामे ही दीजिए हमारे व्यक्तित्वका भी सच्चा प्रतिनिधित्व करता है या नहीं। यदि कबल साहित्यसे कीई हमारे व्यक्तित्वका अनुमान करना बैठे तो यह घोखा ला जावता। हमने संस्कारवचन या प्रवृत्तिवचन एक मात्र इंसान कच्चीचण्ड साहित्यिक लिखेसु साहित्यिक भाव तथा समकौ अभिव्यक्तिकी यान्त्रिक उत्पन्नता बना रखी है। यह श्रद्धावक कथित है ?

मैं स्वयं अंगत इसका गुनहगार हूँ लेकिन मुझे अपनेपर विश्वास भयना विश्वाशामात सिद्ध हसलिय है कि बीरकर बीरे मेरे सहचर है जो मुझे हर उचित बात छाठीपर बड़कर, करना लेंये। हाँ यह बात जरूरत है कि जो बात होपी वह यदि होगा है तो अपने इंसाने ही होपी।



विशिष्ट आर अद्वितीय

मैंने अपने मित्रको तरफ़ स्तम्भित दृष्टिसे देखा । और जब उस श्लोपीने पाया तो कहा— 'मैं क्या कहने जा रहा था ?

मरे इस प्रश्नको सुनकर मेरा मित्र भी अपनी मूछनासे जाम उठा और बोले पढ़ा ।

“तुम कोई गहरी बात कहने जा रहे थे ।

मने उसकी उचितमें कोई व्यंग्य भाव नहीं पाया । मैं याग्निक रूपसे कहने लगा—“हाँ कार्ड गहरी बात ।

मित्र मेरी तरफ़ झुकी होकर देखने लगा । साठ या कि बह उकता पुरा है लेकिन बूँकि मैंने उसकी लूब छातिर-उखाडा की है इसलिए अब वह मेरी बातोंको कह लेमेका सम पालन कर रहा-है । यह भी बाहिर था कि मुझपर एक जडा बड़ गया है — लपामोंका परम गीला और ठंड गगा । लेकिन बूँकि जब वह बड़ हो गया है ता उसका मजा ही क्या न दिया जाये ! सब तो यह है कि मैं अपनमे बिना पूछ उस गगाका मजा निवे जा रहा था और एक दिन वह आया था — साहित्यकार उसे परम पन कहने है — जब मेरी ली कम गयी थी मैं स्तम्भित हा गया था ।

गूब छानी चुननेके बाद हम शिन्दमोकी निरपकटाके बारमे बहन कर रहे थ । बही दैनिक जीवनका कम बही दउतर, बही बउसगंगालो बाने दिनमा और कुछ एपर-उखरणी उप सारिका और 'मनोहर कठानियो 'कारम्बनी और 'जानोश्य । गरम । हमारी शिन्दमो छम्म । शिन्दगीमे दिन्बस्वी छम्म । दिन्बस्वीमे दिन्बस्वी भी छम्म ।

हम सभी खूब पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हैं - इतना कि अपनी-अपनी बड़ोठे सिंग्लिंग और भाषण लिखते हैं जो अतीव काममें रोज़-रोज़ ब्राडकास्ट होते हैं। इस तरह न पाठ्य किताबों ही को पढ़ने बुद्धिमान बना दिया है।

किन्तु मैं कौन-सी 'गहरी' बात कहने का रज़ा या मूल नया। यह तो बुरा हुआ। बड़ी मुश्किलों से एक मोठा फँसा था। आश्चर्य बचते मोठा मिलते नहीं हैं? सबको अपनी-अपनी सुनानेकी पड़ी है। सब तो यह है कि इस मोठेके बाद न मरे इन मित्रको फुरसत रहेगी न मुझे।

कैसे मुझे हमेशा फुरसत रहा करती है। फुरसत निकालना भी एक कला है। गये हैं जो फुरसत नहीं निकाल पाते। फुरसतके बिना साहित्य-चिन्तन नहीं हो सकता फुरसतके बिना दिनमें गपने नहीं देखें आ सकते। फुरसतके बिना बचड़ी-बचड़ी बायिक-बायिक महान्-महान् बातें नहीं सुनायीं।

इन सबके सिवा फुरसत बाह्य और उसको पानेकी कला चाहिए।

तो मैं कबाने बारेमें बात कर रहा था। इन सबबचमें मैं काब्रौ-सि निराल भी निग चुका हूँ। उनकी प्रार्थना भी हुई है। अगर वह प्रार्थना नहीं है तो मैं मुक्त नहीं हूँ। उसी आधारपर मैं हमेशा सोचता रहता हूँ कि मैं बुद्धिमान हूँ किन्तु यह कहते नहीं बनता क्योंकि मैं मन-ही-मन यह महसूस करता रहता हूँ कि अगर मैं मूर्ख नहीं हूँ तो काकायक उकर हूँ। या ऐसी ही किसी घेभीका एक विचित्र पत्नी हूँ।

और इसी तरहको कोई बात सोचने-सोचते मैं नहीं कबिता या उसके पुराने नाम प्रयोगकारी कबिताएँ या जाता हूँ।

हुआ यह कि एक से हमारे सिन्धुटी हायरैक्टर। निम्नी जमानमें से सिपा बिनायमें से। बड़ोमे हुआ याने-याने से देखेसु दिवायेंकेके अन्दर नेत्ररोगी हा मय। पुरान बुद्धि और गुण्ट।

उनके दुर्भागमें उनका एक लड़का अगारानवीम निकला। एक हीने-दाने और उँच इरका आत्मी या बिमरा बेहूत बीडा पीका और

दुखदा था। भर्त्सना और पुच्छेंसार थीं। दुर्दृष्टिके बीच एक गद्दा या जिन कारण उमकी या दुर्दृष्टियाँ हो जाती थीं। मामूली स्मरण बेहरकी दुःखान्त नहीं हो सकती थी। इतन सकुच और घने ये उमके बाण।

उममें तीन बातें बड़ी माफ़की थीं। एक तो यह कि उमके कर्म सुन्दरे थे। अगर एक पैपर चार देकर पढ़ा हो जाये (जैसा कि वह अक्षर करता था) तो वह दूसरे पैरकी उमसे स्पेट-मा सेठा या हाथोंका मिश्रकर उन्हें बाँपोंमें दबा-सा सेठा या और दोनों कर्णोंको पास-पास लागरी (बनबानी) कासिन्न करता था। तब एसा लगता था मानो वह पूरे घटीरकी बीचमें-से मोड़ देगा।

उमकी दूसरी विशेषता यह थी कि बाणजूर अपने ऊँचे करके वह बरा-बरा-सी बातपर होपता था। देखनेवालोंको यह लपका हो जाता था कि इस लम्बे ऊँचे बाणके और सकुच बाणोंके धन जंगलवाले शोधन में नहीं तो भी किन्तु किमी केन्द्रीय स्थानपर मारी बैठी हुई है। उमके रिक्त नहीं तो भी कुछ ऐसा जकर है जो अनुचित और अनावश्यक रूपसे सोम तथा सुदुःख है।

उमकी तीसरी विशेषता यह है कि वह अपने बापको गाली देता था। हाँ यही है कि वह उसके सामने एसा नहीं करता था। कुछ सोम ये — और वे काठी ये — जिन्हें वह अपना दोस्त समझता था उनके सामने वन घाने घरकी बुट्टी-बुट्टी बाँपें बजाता था और दिन हफ्ता करता था। तो मैं उसका शिष्ट क्यों किना।

वह नयी कविता भी सिगता था। बार उम्हें सेबर बत मरे पाठ बचकर बला जाता था। कुछ उमका अस्मित्व विचित्र था और वह अक्षय घोना नहीं था (वह जस्टी जगता जाना था। उमकी सबसे बड़ी धनु धो — उबलाहट) इन्किन मेरी उमसे रसान नहीं बन सकती थी।

सिद्धि मैं उमको गत जाना था जिसका एक बाण यत था कि उमका बाण मरकारमें ऊँचे जोरदार था और मुझ आता था कि उन

हम सभी लूब पड़े-सिक्खे से -
 और भापस सिरते से जो उन्हीके ना
 छह न माकूम बिलना ही को मीने -

किन्तु मैं कौन-सी गहरी ब
 ता बुठ हुआ । बडी मुस्किरने ता
 थोठा मिलते बड़ी है ? सबको
 यह है कि इस पीढ़के बाव न मेरे ह
 बसे मुझे हमेजा कुसत रखा
 कला है । गमे है जो पुरसत ,
 साहित्य चिन्तन नहीं हो सकता
 जा सक्ते । पुरसतके बिना बच्ये
 बाने नहीं मूझती ।

इस सबके लिए झुरसत चाहिए
 ती मैं कलाके बारेमें बात कर
 निबन्ध भी लिख चुका हूँ । सबकी
 नहीं है ती मैं मूख नहीं हूँ । उठी
 कि मैं बुद्धिमान हूँ किन्तु यह बखते
 यह मजसूम करता खड़ा हूँ कि
 हूँ । या ऐसी ही मिथी खेपीका एक
 और इमी छहको बोर्डे बात स
 गुगने नाम प्रयागवासी कवितापर आ
 हुआ यह कि एक से हमारे कि
 गिला बियापमे से । बड़ीम हुआ या
 मेज्जरी हा गप । पुपल बुद्धय और
 उदक दुर्भाग्यम उतना एक
 होके-हाके और उँसे कला मारमी

दुबता था। मर्ने पनी और मुश्किलें पों। दुर्दुकीके बीच एक गह्रा था
 जिस कारण उसकी बा दुर्दुकीयाँ हो जाती थीं। मामूली धमसे बहरणी
 इजामत नहीं हो सक्ती थी। इतन उकल थोर बने य उसके बास।

उममें तीन बार्ते बड़ी मार्केकी थीं। एक था यह कि उसके बग्गे
 लूण्डे बे। बहर एक पैरपर जोर बेकर सड़ा हा जाये (जैसा कि वह
 मरसर करता था) तो वह दूसरे पैरको उमसे छोट-सा बेठा था हाथोंको
 निगाहर उन्हें बाँधेनि बजा-सा क्ता था और दोनों कन्धोंको पास-पास
 कलेदी (बनजामी) कोविद्य करता था। तब ऐसा सगता था माना
 वह पूरे घरीरको बीचमेंसे मोड़ देगा।

उमकी डूमरी विद्येपता यह थी कि बाबजूर अपन ठँबे करके वह
 बय-बरा-सी बातपर सेपता था। देखनबासोंको यह सयाक हो जाता
 था कि इस मन्ने ठँबे करवाले और उकल बासोंके घन बगलबासे चौड़पन
 में कहीं तो भी किन्तु किन्नी केन्द्रीय स्थानपर, गारी बैठी हुई है। उसके
 रिबमें बहों तो भी कुछ एसा उकर है वा अनुचित और जनाबन्धक कणस
 कोमल तथा मुकुमार है।

उमकी तीवरी विद्येपता यह है कि वह अपन बापको गाली देता था।
 ही सही है कि वह सबके सामन ऐसा नहीं करता था। कुछ सोप ये -
 और बे काटो य - जिहें वह अपना दोस्त समझता था उनक सामने
 बस जाने घरकी बुटी-बुटी बार्ने बगता था और दिख हलका करता था।
 तो मन समका डिक क्यों किया।

वह नयी कबिता भी सिक्ता था। आर उममें सेकर बह मरे पाठ
 बरमर बसा आता था। कृि उसका व्यक्तिब विचित्र था और वह
 मक्या थोटा मरी था (वह जग्नी उकता जाता था। उमकी मन्ने बड़ी
 पद्म धो - उकनाहट) इमलिब बरी उमसे बरास नहीं पन सकती थी।

सेकिन में उसकी मद जाता था जिसका एक कारण यह था कि
 उमका बाग मन्कारमें ठँबे औरदेर था और मुने आता थी कि उम

कहानी'के मतलबका नया अर्थकी धुन्धसे भ्रमण किया जाये। क्या मैं इस
 बहान मूठ बास रहा हूँ ॥

योर मेरा तो अपना यह जमाना है कि वह मेरा बँड्या बोस्त बदर
 'नयी कविता लिखना या तो ठीक ही करता था। किसी कविता परमल
 निष्पुण्यकी वैयक्तिक प्रमंग प्राप्त और प्रतीय-प्रस्त मनोरथाकी कविता
 है। भक्ति शक्ति जैसे वैयक्तिक प्रमंग बनेकके हो सकते हैं, और होते
 हैं (मने ही कुछ समय उन्हें छिपा जाये) तो उनको एक सामाजिक प्रम
 और महत्व तो प्राप्त हो ही जाता है। कवि उस प्रमंग - स्थितिमें बड़
 रङ्कर उनके भीतरसे संबेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ करता है। किन्तु केवल
 संबेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ ता किसी भी प्रमंग-स्थितिका सम्पूर्ण वस्तु-सत्य
 नहीं हो जाती।

कथाकार यदि तत्काल जीवनका यथार्थ और व्यापक ज्ञान रखता है तो
 बड़ प्रमंग-स्थितिमें बड़ मनुष्यकी संबेदनात्मक प्रतिक्रियामेंको ही महत्व
 नहीं देना बल्कि उस स्थितिसे सम्बन्ध रखनेवाले जो वस्तु-सत्य हैं उनको
 बनावेवाले तर्कोंपर अपना व्यक्ति-स्वभावकी विशेषताओं वास्तविकताकी
 वैचारीयता और अवलोक बरते जाय इस सबके विकास-क्रमपर इन
 नकार बकाय ही ध्यान देकर, इन प्रमंग-स्थितिके वस्तु-सत्यके सारे ताने-
 बान (कथात्मक प्रभावशाली रूपसे मॉडि अंशमें नहीं) प्रस्तुत करेगा।
 और इस प्रकार व्यक्ति-ममस्यावा मानव-ममस्या बनाकर एक व्यापकतर
 पारवर्तुविमें उसे जगत्स्थित करेगा। देना करना चाहिए।

देगिए मैं किसी शम्भानली जागको गिलायी क्विज ध्यान रणिय कि
 में समीक्षा होना भी बाधा कर सकता हूँ (करता ही हूँ। बागिर कीन
 नहीं करता है। इन सब एक-दुनरेके समीक्षा है)।

हो तो मुझे बाजार बाह्ये कि नयी कहानी में जाबुनिक मानव
 (इनका मन-मन बाह्ये को भीगिए प्रगतिवादी सर्व मत्त जीवित) की जो
 एक माहिम्निककी बावरी

विभिन्न मनोदया हैं उसका अगर आप उसके सारे सम्बन्धों को काटकर, उनके सारे बाह्य सामाजिक-पारिवारिक इत्यादि सम्बन्धों को काटकर उस मनोदयाको माना बचपन से छुटकाकर — विभक्त करेंगे तो मनोदयाके नाम पर (कहानीमें) एक भ्रम समा जायेगा । कहानीमें बचपन सिद्ध भीतरी भ्रम ही और सिद्ध बहो बहु रहें और उसीकी इतनी प्रमानता हा कि बस्तु-सर्वथाके संबन्धनात्मक चिन्तोंका प्रायः काप हो आम ता आप बही गलती करेंगे कि ओ (मेरे लयात्मक) नयी कविताके को । कविताकी कथा कथाको कथासे अत्यन्त अलग तो बैठे ही होती है । इसलिये सम्भवतः समयमें ब बातें टप भी जाती है । किन्तु कहानीमें ? यानी मैं यह चाहता हूँ कि साहित्यमें मानवको पूरा मूर्ति (बहु फिर जैसी भी हा) स्थापित की जाये । तभी हम अपनी ससक उसमें बैठ सकेंगे । अगर 'नयी कहानी' (या कोई भी कहानी) बैठा नहीं करती तो मेरे लयात्मक यह उचित नहीं है । मैं तो सिद्ध एक तुलनेकी ओर आपका ध्यान िखा रहा हूँ ।

बच आप जान गये होंगे कि मैं किस तरह यह चाहता हूँ कि लूबमूरत सड़कीको मगाकर ले गये उस पीछे चौड़े चहरे और ऊँचे कर्णसेनी बुरी बिल्पी (साहित्यमें) उसकी बगल लड़ी हा जाये एसी उसकी बिलमें अपनी भी ससक हूँ मिले—

क्याकि मैं सब बहूँ (आर मैं सब कहनपर आमान हूँ) कि मुझे बचपन यह समा है सगता रहा है कि उसने जो कुछ किया है बैठा उन हाटनमें को भी कर सगता था । मैं होता तो मैं भी करता । हाँ यह टिक है कि उच्च नुरु-जाति-नामकी लड़कीसे उसने विवाह बही किया और इन प्रकार उसने असह्यताके सम्ये तैयार कर लिया । लेकिन यह ऐसी औरतसे तो बरी टप था अपन पिताकी पानगा रीब अपने गाकिशपर गालिब करती है और पति बैठा होने भा बैठा है क्योंकि सुभीता और सुघटारीका रास्ता भी बनी है ।

एक बात बचाऊँ ? कुछ लोग ऐसे हाते ही हैं जिन्हें नामवादी शक्ति

करनेके मुम्पोंसे डर लगता है। और कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें मुम्पोंकी
 वीरना नहीं पडता। वे आप ही आप मा जाते हैं।

एक जमाना खपन-खपन इंगके कामयाब लोग ठपार करता है।
 बहादुरीके जमानमें तलवारबाजीके जमानमें हम सरीसे आरमियॉकी उरुत
 थी। आज एम सोम अपनी दरबत लकर अरेरमें डूबे हुए हैं आजके
 जमानमें एस सोम नाकामयाब होनके लिए ही जिम्मा है।

तो ऐसे व जो नाकामयाब सोम हैं उनके मजहब मलम-बलम है।
 कोई व्यक्ति कम्पाकारक घमको निबाहता है तो कोई राजनीतिके उरता
 बारका मप्रदूत है। असलम वे सब प्रम्पेटेड इण्डियिग्युवन्स हैं—वैश्य
 प्रमत्त व्यक्ति है।

हाँ यह सही है कि किसीका वैश्य रिखायी देता है और किसीका
 नहीं। बीमे ऊपरी तौरपर सन्तुलित सब है। यह अच्छा है या बुरा मे
 मही जानना।

क्या मे नाम लूँ? मान लीजिए थी 'क जो उपम्याउबार कवि
 बहानीकार तथा समोराक और म्पारक रहे जाये हैं, बाक-बन्धेदार
 आदमी हल्ले तो वे वैश्यकी बीय बीबन-यात्रा करके उत्तमोत्तम रल
 डिम्बी गारियको न देते! (जाय समश नये हूँनि मय इयाउ किस
 तरड है) व डिम्बी काम्यमें माबुनिबतावारके एक विरार भी न होते।
 गम्भबन् व्यक्ति-बडता (यह पण्डित रामबाबू गुजनकी जाया है) कि वे
 एक मुन्दर उदाहरण भी न हाते।

और साबिए। उत्तर-प्रदेशके एक तीय स्थानमें रहनेवाले एक ह्यारे
 मित्र है। बिभूनि है। प्रबयान है। नयी कविताके विरोमणि है। बिभूतल
 उम्पागमकतामें रचना करते हैं। मुन्दर किन्तु गोपन बिच प्रस्तुत करते हैं।
 मान लीजिए कि वे बाक-बन्धेदार आदमी हल्ले तो उनकी प्रतिमा
 म्पारक कीपन् भावना ना करणा बपना एमे ही किनो भावमें बदल
 जाती।

एक साहित्यिककी बाबी

एक हमारे मित्र बहुत दिनोंसे राजधानीमें रहते हैं। यदाश्री है। कटुता क्रोध और बफुस्य उनकी विशेषता है। फिर भी उन्हें अच्छी तरह जाननवालोंको मान्य है कि वे कितने प्यारे हैं।

मान लीजिए कि वे भी बाल-बच्चेदार जादमी हूँ तो मैं आपसे कहूँ कि उनकी कटुता क्रोध और बफुस्यका रंग निराम्य होता। मैं मान लेता हूँ कि उनकी यह स्वभाव है। लेकिन उन स्वभावका रंग उकर बदला हुआ होता।

पन्तबीमे लेकर अछुत नबोल कहियोंका बरिताबन्नी देन लीजिए तो पायेंगे कि अधिकतर लेनकोंमें जिताम्ल वैयक्तिक स्तरपर बरुस्य भावना है (मने हो उनमें-मे कुछ अमरीका आ आय हों) जिसका कारण मम्मबत यह है कि वे विवाहहीन हैं - या जिनकी औरत मर गयी है - या बाल-बच्चेदार न मही हैं।

मध्यमें (हो इस पदका प्रयोग मुने उकर करना चाहिए, क्योंकि माग्दपमें मे कोई बात नहीं कर सकता) इन मशरयोंके जीवनमें जिन पारिवारिक मुग कहा जाता है वह मही है। कारणोंको ठग मत जाइये। वह मगनी-मगनी बाराणा और कन्पनाका विषय है। इस प्रकार वे मिक अपन लिए रह रहे हैं (क्या यह अतिग्याक्ति है? किस अरवार तो हा ही मगत है) दुगरे दायोंमें इनका माधुनिक मानव पारिवारिक व्यक्ति नहीं होता। (मने रिबाम्युनारी बात कह दो है। लेकिन उममें मने हर क्यना है क्याकि अब गब मिककर मने पीटेंगे) और जो पारिवारिक व्यक्ति है उममें नहीं न नहीं माधुनिकतामें मने हैं - या एमा ही कुछ।

लेकिन ऐसा क्यों हुआ है? मरे ग्यामने इनका कारण यह है कि विवाहापरान्त मपनी स्त्रीको पक्काग्याममें भरती कराना पड़ता है मंगान पर माचना-विचारना पड़ता है। स्कूलमें मास्टर माहबकी दरगात देनी पड़नी है कि मये मरुकी किन्ही कारणसे स्कूल मही भा सरगी। मरुकों

कड़कियोंके विवाहके सम्बन्धमें पहले ही सोचकर रखना पड़ता है। हमारे
 बङ्गालेकी कोशिस करनी पड़ती है। बुधरोंके सहमता सेनेके लिए विचर
 जाना पड़ता है। इसलिये उनमें दया ममता कर्मका बालकत्व कठम-
 बोध विचरताके भाव होते हैं और इसके जसाबा उन्हें हर क्षणपर
 समाजके दमन होते हैं - वास्तविक समाजके उस समाजके जो संगठित
 है विभिन्न संस्थाओंमें व्यक्त और काय-शील है। वह उन्हें डॉक्टरके
 रूपम दुकानदार और पोस्टमास्टरके रूपम मकान-मालिकके रूपमें
 विरन्तर भेंट दता रहता है। वह उनके लिए प्रत्यक्ष अनुभव और वास्त-
 विक सवेदनारमक प्रतिक्रियाका विषय है। उनके लिए वह केवल परिवेश
 या परिधि नहीं है बल्कि एक ऐसा बीठा-जापटा वस्तु-सत्य है जिसका
 अन्वय वे स्वयं हैं। अगर वे सब चिन्तकर उसकी परिस्थिति है तो वह
 इनसे भिन्नकर किसी तीसरेकी परिस्थिति है। और य सब परस्पर क्रिया
 प्रतिक्रिया करते हैं यह उसे अपने व्यावहारिक जीवनमें मान्य हो जाता
 है। समाज उसके लिए मीढ़-अङ्गकेका नाम नहीं। वह अमूर्त कल्पना भी
 नहीं क्योंकि उसके लिए पैशन और प्राविष्टेष्ट पण्डकी व्यवस्था भी नहीं
 करता है। इनलिए समाज उसके लिए बीधन और स्थानमौल वस्तु है।
 उस समाजके विना न उनका मुकाबला ही तफटा है न उसके बच्चोंकी
 शिक्षा न उनका विवाह, न उनको नौकरी। अपने और अपने परिवारकी
 अस्तित्व-रक्षाके मुद्दमें भी उसे समाज ही है जैसे गोलों और मास्को-
 द्वारा उगापटा मिलती है। समाज ही के हम प्रत्यक्ष बोधके कारण उसे
 जनताकी ओर बहनेका और बीड़ बहनेका साहस नहीं हुआ। अपने बाल-
 बच्चोंको लेकर वह लगनों और करोड़ोंमें गोमा हुआ रहता है। और
 उनका उसे भुन नहीं बनता। उसे अच्छा लगता है क्योंकि वे सान-करीफ
 उन जैसे ही दाने हैं। उन्नीसे बड़े गुण और गुण अच्छाई और बुद्धि
 म्यात्र और अम्यात्र आर्यं और यथाय मुन और बुद्धका बोध करता है,
 संघर्ष और पैनीका भाव धारण करता है। बाल-बच्चोंदार हीनेपर ही

अनुपमकी धर्मम अहंकारिता काटती हृद तक घिस जाती है ।

किन्तु इमार अविनाश कवि 'अद्वितीय' है । वे स्वयं इस अद्वितीयता की रक्षा करते हैं । यों कहिए कि इस अद्वितीयताके कारण ही वे कवि हैं । मैं यह नहीं कहता कि अद्वितीयता उमका बोध है । मैं यह कहना चाहता हूँ कि अद्वितीयताकी या परिभाषा इन कवियोंने अपने लिए छोटकर रखी है वह उमका है । वे अपने अर्थम संबेदन-शील प्रतिमा वास्तविकी अद्वितीयता कहते हैं । और मैं यह कहता हूँ कि समकालीन विचार न हीमसे उनके मुकामम उमकुमोंका विस्तार नहीं हुआ है और न मुकामम उमकु समाजकी विभिन्न संस्थामोंसे समाजके विविध रूपोंसे पनिष्ठ रूपस जुड़ नहीं पाये हैं । इसलिये समाजका वास्तविक प्रत्यक्ष संबन्धनात्मक बोध समाजके भीतर व्यक्ति-मानवता — जो उसकी विभिन्न संस्थामोंके भीतरस ही किसी न किसी मायामें व्यक्त होती है — का हार्दिक परिचय उन्हें नहीं है । इसलिये वे मुक्त-हृदय भी नहीं हैं । जीवनमें अत्यन्त सारमूल मुकामम अनुभवोंने वे बंध गये हैं । इनके लिए समाज केवल आत्मप्रयोग है । रेतका ढर है, भीड़नाड़ है, सोरोंकी लक्ष्मण करती हुई पीड़ है ।

और अमर समाजका उन्हें अनुभव भी है तो वह कैसा है । मोष्टे, समा, महकिल प्रकाशक पैसा देवेवाला आत्मिक, राजनीतिक पार्टी सरकार और उसके कर्मचारी — एसे ही इमों-दारा समाज व्यक्त हाता है उनके सापन । इम रूपोंसे हार्दिक आत्म-सम्बन्ध स्थापित हों तो र्भने हों । अविनाश अतिक इस समाजमें उनके कुछ परिचित लोग हैं जो मले आदमी भी हैं । व्यक्तिपोंके मुक्त और सुगुणोंका उन्हें बोध होता है । इसलिये वे समाजमें व्यक्तिपका ही बताते हैं ।

एमे लोग जो कवि हैं कहानी भी लिखते हैं और कहानीमें परिवार का भी चित्रण होता है । परिवारका चित्रण भी एसा मकसूद विद्वत और विद्वत होता है कि समता है कि उन परिवारिक पात्रोंमें केवल यत्री-भूत अर्थम भावात्मकता है । इसमें अतिक या इसके परे या इमके अतिरिक्त

हाता है ? तो महोदय आप जान जायें कि वास्तविक अस्तित्व संघर्षमें
 उत्पन्न विरोध सम्बन्ध-युक्त विरोध विरोधमुख तथा विरोध भाव-वृद्धि-सम्पन्न
 को मनाभाव है उन्हें कलात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त करनेका कोई अधिकार
 नहीं है और यदि मान भी लिया जाये कि अधिकार है तो हम यह कहें बने
 कि वह अभिव्यक्ति को आपने ऐसे भाव-समुदायोको प्रदान की वह कलात्मक
 नहीं है और यदि कहीं वह सचमुच कलात्मक है यह सिद्ध हो ही गया तो
 हम यह कहेंगे कि वह कृति आपुनिक भाव-बोधके अस्तित्व नहीं जाती ।
 किस्मा तरल । समझा गया ! एक विरोध प्रकारक भाव-समुदायोको ही
 माम्यता प्राप्त है, बायोंको नहीं ।

ज्यों ही इनका सब साधक मेरे अपन निबन्धी तरङ्ग देखा ता पाठा
 गया है कि कुरी गाली है 'मूनी एकदम मूनी ! मुझपर यहाँ जाती
 पड़ गया । न मालूम सब वह बठकर बला गया था ।



